विषय सूची

पृष्ठ

अध्याय 1 प्रस्तावना

अध्याय 2 न्यायालयों में विलम्ब में योगदायी मुख्य कारण जिनका पहले अवलोकन किया गया है ।

अध्याय 3 मुख्य कमियों के लिए उपचारी उपाय

अध्याय 4 अज्ञात क्षेत्र के लिए सुझाव

अध्याय 5 कंप्यूटर ~~तकनीक~~ प्रौद्योगिकी

अध्याय 6 निष्कर्ष

निर्देश

परिशिष्ट 1- उच्च न्यायालयों में विस्फोटी न्यायालय डाकटों की समस्या का मुकाबला करने के लिए समितियों / आयोग द्वारा गत समय में की गई सिफारिशों का संक्षिप्त विवरण (पैरा 1.6, 4.1 और 6.1 देखिए)

परिशिष्ट 2- भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ~~न्यायाधिपति~~ को पत्र (पैरा 3.6 और 3.24 देखिए)

परिशिष्ट 3- प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ~~न्यायाधिपति~~ को पत्र (पैरा 3.6 और 3.24 देखिए)

डी० ए० देसाई
अध्यक्ष

विधि आयोग,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-29 फरवरी, 1988

अ०शा० सं० 6(2)(4)/87-वि०आ०

श्री बिन्देश्वरी दुबे,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

प्रिय श्री दुबे,

न्यायिक सुधारों के अध्ययन के लिए भारत सरकार ने जो निर्देश निबंधन निश्चित किए थे उनके भाग के रूप में, वर्तमान विधि आयोग द्वारा, उच्च न्यायालयों में मुकदमों की अप्रबन्ध्य बकाया के जमा होने के लिए जिम्मेदार कारणों की बाबत ग्रहण किए गए अनुसंधान को जारी रखते हुए, मैं आज "उच्च न्यायालयों में मुकदमों की बकाया : नव दृष्टि" पर एक सौ चाबीसवीं रिपोर्ट प्रेषित कर रहा हूं ।

जैसा कि आपको विदित ही है, कि उच्च न्यायालय की बहु-आयामी अधिकारिता होती है । सभी अधिकारिता क्षेत्रों से तथा विशेषतया सांविधानिक परमाधिकार रिटों के क्षेत्र से कार्य का अंतर्वाह, इस विधि आयोग की दृष्टि में, डाकेट विस्फोटन के लिए भागतः और मुख्यतया जिम्मेदार था । अतः विधि आयोग ने पूर्वतर रुख का अनुसरण न करते हुए यह नीति परक विनिश्चय किया कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता का पुनर्मूल्यांकन किया जाए तथा ऐसे विषयों का, जिन पर विशेष अधिकरणों द्वारा कार्रवाई की जा सकती है, उसकी अधिकारिता से अपवर्जन कर दिया जाए । इस दृष्टिकोण से न्याय प्र

के विकेन्द्रीकरण में भी सहायता मिली । राष्ट्रीय कर न्यायालयों, औद्योगिक श्रम आयोगों और केन्द्रीय शिक्षा अधिकरण की स्थापना की जाने की सिफारिश करने वाली रिपोर्टों से तथा साथ ही केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा अधिकारिता के ग्रहण कर लिए जाने के कारण, उच्च न्यायालयों में कार्य के अंतर्वाह को भारी अन्तराआघात लगेगा ।

यदि अंतर्वाह का बहिर्वाह पर इस प्रकार विनियमन किया जा सकता है तो दो दृष्टिकोणों पर विचार किया जाना आवश्यक है । उनका संबंध रिक्तियों के भरे जाने में अतिमात्र विलम्ब और सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के बुद्धिवैभव का उपयोग न किए जाने से है । प्रस्तुत रिपोर्ट में इस पहलू की जांच की गई है । यदि इसमें उपदर्शित विभिन्न बातों को एक सद्व्यवहार के रूप में ग्रहण किया जाता है तो अवश्य रूप से, उच्च न्यायालयों में मुकदमों की बकाया के प्रबंधकरण की समस्या का समाधान किया जा सकता है । यह रिपोर्ट भेजते समय यही आशा है ।

यदि उच्च न्यायालयों के डॉकिटों को, आवश्यक परिणाम के रूप में संभाला जा सकता है तो उच्चतम न्यायालय में कार्य के अंतर्वाह पर सीधा असर पड़ेगा ।

न्यायिक सुधारों की समस्या के अध्ययन में विधि आयोग द्वारा किए गए कार्य के लिए आपने अपने 19 फरवरी, 1988 वाले पत्र द्वारा जो अधिमूल्यन अभिलिखित किया है, उसके लिए मैं अपनी ओर से तथा विधि आयोग की ओर से आपका आभारी हूं ।

6 मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि रिपोर्टों के शीघ्र परीक्षण और अनुवर्ती कार्यवाही से विधि आयोग को अपनी कार्य अनुसूची का अधिक प्रबलता से अनुसरण करने का प्रोत्साहन मिलेगा ।

सादर, भवदीय,

अनुलग्नक: एक रिपोर्ट (डी० ए० देसाई)

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. विधि आयोग ने इस समय प्रवर्तमान न्यायप्रदान प्रणाली की सोपान क्रमिक संरचना की आधारशिला पर अपना ध्यान, अपने को समनुदिष्ट इस कार्य के अनुसरण में केंद्रित किया कि न्यायप्रदान प्रणाली का यह पता लगाने की दृष्टि से अध्ययन किया जाए कि इसमें क्या दोष है तथा इस दृष्टि से भी अध्ययन किया जाए कि नैदानिक प्रयास के पूरे होने पर ऐसे उपायों की सिफारिश की जाए जिनसे कि उक्त प्रणाली मौलिक रूप से सुधर कर कारगर हो जाए और उससे समान अवसर का समाधार अग्रसर हो सके और यह सुनिश्चित हो जाए कि कोई भी नागरिक आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित न रहे। जो मुकदमे न्यायिक सोपानतन्त्र की उपरली श्रेणियों पर पहुंचते हैं, उनमें से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं। तदनुसार, विधि आयोग ने ग्रामीण और अर्धनगरीय क्षेत्रों की न्यायालय प्रणाली की संरचना की जांच की और उसकी पुनर्रचना की जाने की सिफारिश की जिससे कि विवादों के सुलझाने के लिए नए माडल या नई क्रियाविधि की व्यवस्था हो जाए। नए माडल का[1] आवश्यक तत्व है सहभागी न्याय का सिद्धान्त। इस दृष्टिकोण से इस बात की भी आवश्यकता महसूस हुई कि न्यायिक सोपानतन्त्र के भीतर अन्य स्तर या प्रणालियां स्थापित करके न्याय प्रशासन की प्रणाली का विकेन्द्रीकरण किया जाए जिससे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय में कार्य की मात्रा घट जाए। इस निमित्त सुसंगत निर्देश-पद निम्न प्रकार हैं :

1- न्याय प्रशासन की प्रणाली के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता :

(i) ----------------------------------

(ii) ----------------------------------

(iii) न्यायिक सोपानतन्त्र के भीतर अन्य स्तर या प्रणालियां स्थापित करके जिससे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा घट जाए ।

2- वे विषय जिनके लिए कि संविधान के भाग 14क में अनुध्यात अधिकरणों (सेवा अधिकरणों को छोड़कर) के शीघ्र ही स्थापित किए जाने की आवश्यकता है तथा उनकी स्थापना और कार्यकरण से सम्बन्धित विभिन्न बातें ।"

1.2. ऊपर उद्धृत निर्देश पदों पर सामान्य दृष्टि से विचार करने पर यह उपदर्शित हो सकता है कि विधि आयोग का सम्बन्ध मात्र उन अन्तर्पथों का पता लगाने से है जिनसे होकर ~~कि~~ उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में काम आता है तथा संविधान के भाग 14क में यथा अनुध्यात उसके इस दृष्टि से प्रशाखत से है कि काम के अन्तर्वाह में व्यवधान का उपबन्ध हो जाए ताकि न्यायालय डाकेट जिनसे मुकदमों के अतिपात का पता चलता है, सुप्रबन्धक हो जाएं । इस दृष्टिकोण की परीक्षण परिधि के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों की तथा उच्चतम न्यायालय की भी आमूल पुनर्रचना नहीं आती है ।

1.3. साधारणतया न्याय प्रदान प्रणाली की तथा विशिष्टतया उच्च न्यायालयों की अपने समक्ष आने वाले मामलों का शीघ्र निपटारा करने में असफलता की तीक्ष्ण आलोचना के

बावजूद इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि फिर भी उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय का वादकारियों और शिक्षित समाज के बीच बड़ा आदर और आसक्ति है। उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की आमूल पुनर्रचना के सुझाव मात्र का निरन्तर और तीव्र विरोध किए जाने की संभावना है। उच्चतम न्यायालय के अन्तर्गत सांविधानिक खंड की प्रस्थापना के निरन्तर विरोध की उपेक्षा करना उचित नहीं होगा। अत: पहले तो इस बात के प्रयास किए जाने चाहिए कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता की व्यापकता को समझा जाए और उच्च न्यायालयों में कार्यकरण में सुधार लाने के लिए की गई सिफारिशों को पुन:स्मरण किया तथा यह अभिनिश्चय किया जाए कि क्या उच्च न्यायालय की अधिकारिता को कम करने का तीक्ष्ण उपाय और अपरिहार्य है।

1.4. आरंभ में उच्च न्यायालयों की वर्तमान अधिकारिता के पर्यवलोकन से उच्च न्यायालय को सौंपे गए कार्य की विशालता का आभास होता है। उच्च न्यायालयों को सिविल एवं दांडिक, मामूली एवं गैर मामूली तथा साधारण एवं विशेष अधिकारिता प्राप्त है। अधिकारिता का स्रोत संविधान तथा विभिन्न कानून और लैटर्स पैटेन्ट तथा उच्च न्यायालयों का गठन करने वाली अन्य लिखतें हैं। देश के उच्च न्यायालयों को वसीयती, वैवाहिक और संरक्षकता सम्बन्धी मामलों में आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, कम्पनी अधिनियम 1956 तथा अन्य अनेक विशेष कानूनों द्वारा आरंभिक अधिकारिता प्रदान की गई है। उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय हैं। अत: उन्हें अपने अवमान तथा अपने अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्ड देने का अधिकार है। उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227

के

के अधीन गैर मामूली अधिकारिता प्राप्त है जो उन्हें परमाधिकार रिटें जैसे कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा तथा उत्प्रेषण की प्रकृति की रिटें जारी करने के लिए समर्थ बनाती है। इसके अतिरिक्त, मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और मद्रास के उच्च न्यायालय मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का भी प्रयोग करते हैं। उच्च न्यायालयों को सलाहकारी अधिकारिता भी प्राप्त है, जैसा कि भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 256, धनकर अधिनियम, 1957 की धारा 27, दानकर अधिनियम, 1958 की धारा 26, तथा कम्पनी (लाभ) अतिकर अधिनियम, 1958 की धारा 18 से दर्शित है। इसी प्रकार, उच्च न्यायालयों को सलाहकारी अधिकारिता प्रदान करने वाले समांतर उपबन्ध भी हैं, जैसे कि सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130 तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की धारा 354। उच्च न्यायालयों को भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 तथा पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936 के अधीन भी अधिकारिता प्राप्त है। उच्च न्यायालय की व्यापक अधिकारिता के प्रयोग में उसके समक्ष आने वाले विभिन्न प्रकार के मुकदमों के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। अधिकारिता के विस्तृत क्षेत्र को इन नामों के प्रति निर्देश से ठीक-ठीक समझा जा सकता है, अर्थात् (क) प्रथम अपीलें, (ख) लैटर्स पैटेन्ट के अधीन अपीलें, (ग) द्वितीय अपीलें, (घ) पुनरीक्षण अर्जियां, (ङ) दाण्डिक अपीलें, (च) दांडिक पुनरीक्षण, (छ) सिविल और दांडिक निर्देश, (ज) रिट अर्जियां, (झ) रिट अपीलें, (ञ) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर विधियों के अधीन निर्देश, (ट) विक्रय कर अधिनियम के अधीन उद्भूत होने वाले मामले, (ठ) लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन निर्वाचन याचिकाएं,

(ङ) कम्पनी अधिनियम, बैंककारी कंपनी अधिनियम और अन्य विशेष अधिनियमों के अधीन अर्जियां तथा (ढ) जहां भी उच्च न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है, वहां उस अधिकारिता के प्रयोग में वाद और अन्य कार्यवाहियां। इस विविध अधिकारिता के कारण कुछ हद तक उच्च न्यायालयों में अत्यधिक मामले संस्थित होते हैं। नीचे दी गई सारणी से उच्च न्यायालयों में संस्थितियों, निपटारों और लम्बित मामलों की आरोही .... प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाएगी :-

वर्ष	संस्थितियां	निपटारे	लम्बित मामले
1982	6,63,183	5,51,785	9,76,781
1983	6,71,195	5,40,357	11,09,188
1984	7,07,912	5,75,451	12,51,945
1985	7,31,543	6,05,698	13,77,790

लम्बित मामलों की आरोही गति अनुदार हो गई है, जैसा कि 5
इस विषय में उपलब्ध अन्तिम आंकड़ों से स्पष्ट हो जाएगा।

क्र सं०		उच्च न्यायालय	लम्बित मुकदमे	निम्न तारीख को
(क)	1.	पटना	56,904	31.12.1985
	2.	राजस्थान	48,921	31.12.1985
		जोड़	1,05,825	
(ख)	1.	इलाहाबाद	2,88,060	30.6.1986
	2.	केरल	1,20,890	30.6.1986
		जोड़	4,08,950	
(ग)	1-	मद्रास	1,87,250	31.12.1986
	2-	कलकत्ता	1,56,447	31.12.1986
	3-	कर्नाटक	66,741	31.12.1986
	4-	मध्य प्रदेश	53,888	31.12.1986
	5-	गौहाटी	17,880	31.12.1986
	6-	हिमाचल प्रदेश	8,820	31.12.1986
		जोड़	4,91,026	

(घ)	1- मुम्बई	1,33,245	30.6.1987
	2- आन्ध्र प्रदेश	86,137	30.6.1987
	3- दिल्ली	77,191	30.6.1987
	4- पंजाब और हरियाणा	53,568	30.6.1987
	5- गुजरात	52,623	30.6.1987
	6- उड़ीसा	37,854	30.6.1987
	7- जम्मू-कश्मीर	35,945	30.6.1987
	8- सिक्किम	36	30.6.1987
	जोड़	4,76,599	

कुल जोड़ (क+ख+ग+घ) = 14,82,400

1.5. विकट परिस्थिति इस बात के कारण और अधिक संकुल हो जाती है कि उच्च न्यायालयों के वर्तमान रिक्त स्थानों को भरने में अत्यधिक विलम्ब हो जाता है। संसद की प्राक्कलन समिति ने, जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में मुकदमों के लम्बित होने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रही थी, यह पाया कि (3-2-1986) को विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की 69 रिक्तियां बिना भरी मौजूद थीं, तथा उसने यह मत व्यक्त किया कि यदि परिस्थिति में पर्याप्त सुधार नहीं होता है या वह वैसी ही बनी रहने दी जाती है तो इसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि वादकारियों को शीघ्र और कम खर्चीला न्याय प्रदान करने से जानबूझकर वंचित किया जा रहा है। समिति ने यह राय भी व्यक्त की कि यदि न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया से उनके चयन और नियुक्ति में अत्यधिक विलम्ब होता है तो उसे बदलने के उपाय और साधन निकालने होंगे।

1.6. उच्च न्यायालयों में न्यायालय डाकेटों की वृद्धि की समस्या को हल करने के लिए पूर्व ~~काल में~~ आयोगों और समितियों द्वारा आठ प्रयास हो चुके हैं। मौलिक और प्रक्रियात्मक विधियों का संशोधन करके परिस्थिति को सुधारने के लिए अनेक सुझाव ~~[illegible]~~ दिए गए हैं। उनमें से कुछ का तो कार्यान्वयन किया जा चुका है किन्तु अधिकांश की घोर ~~[illegible]~~ उपेक्षा कर दी गई है। कुछ समय बाद ये सिफारिशें भुला दी जाने की संभावना है जब कि नई समितियों/आयोगों की ओर से अनिवार्यत: उन्हीं अ[illegible] पूर्वतन सिफारिशों की पुनरावृत्ति की जाएगी तथा नई सिफारिशों का भी पूर्ववर्ती सिफारिशों की भांति ~~[illegible]~~ वही परिणाम होगा। इस पृष्ठभूमि में प्रभावी रूप से यह समझना संभव नहीं है कि यदि इन सिफारिशों को पूर्णतया कार्यान्वित किया जाए तो उससे समस्या हल हो जाती या कम से कम सुप्रबन्ध्य ~~[illegible]~~ हो जाती। आयोग उन्हीं की पुनरावृत्ति का प्रयास नहीं करना चाहता। निष्ठा और सद्‌भावपूर्वक यह धारणा की गई थी कि पूर्व सिफारिशों के कार्यान्वयन से इस प्रणाली का उद्धार होगा और इसकी [illegible] गरिमा पुन:स्थापित होगी। अत: सभी सुसंगत सिफारिशों का संक्षेप उपाबन्ध 1 में दिया गया है।

1.7. एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि साथ ही यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय की विपुल अधिकारिता के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाए और इस बात की जांच की जाए कि क्या कोई उपयुक्त काट-छांट की जा सकती है जिससे उच्च

न्यायालयों को अपने सांविधानिक कृत्यों के निर्वहन में सहायता मिले ।

1.8 साथ ही, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि जब उच्च न्यायालय की प्राप्त अधिकारिता के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाए जाने का प्रयास किया जा रहा है तो विधि आयोग नए सिरे से कार्रवाई नहीं कर रहा है । उच्च न्यायालय की संरचना, उसकी विस्तृत अधिकारिता, अपने समक्ष जाने वाले मामलों की बाबत शीघ्र कार्रवाई करने के उनके दायित्व, आगत-व्यय, संरचना तथा उच्च न्यायालयों के कार्यकरण के विषय में जनता के अनुमान की जांच करने के गत समय में अनेक प्रयास किए गए हैं । इस बाबत अनेक सिफारिशें की गई हैं ताकि उच्च न्यायालयों का कायाकल्प हो और उन्हें पुनर्जीवित किया जाए । उन सिफारिशों को इस रिपोर्ट के भाग के रूप में दोहराना सुज्ञात बातों की पुनरावृत्ति करना होगा । विधि आयोग ऐसी पुनरावृत्ति से निश्चय ही बचना चाहेगा जो साधारणतया पिष्टपेषण समझी जाती है । जैसा कि ठीक पूर्ववर्ती पैरा में बताया गया है, सभी गत रिपोर्टों से एकत्र की गई सिफारिशें परिशिष्ट 1 में उपवर्णित हैं, जो कि प्रस्तुत रिपोर्ट की सिफारिशों का भाग नहीं हैं, किंतु उन सिफारिशों के बारे में सरकार की स्मृति को ताजा करने मात्र के लिए तथा यह निष्कर्ष निकालने के लिए दी गई हैं कि क्या सरकार उन्हें कार्यान्वित करने वाली है या नहीं । इन सिफारिशों के अधीन रहते हुए, विधि आयोग कुछ सिफारिशें करेगा जिससे कि उच्च न्यायालयों को जनता और न्याय अभिमुख बनाने के लिए उन्हें और अधिक प्रबल बनाया जाए ।

1.9 उच्च न्यायालयों के कार्यकरण, उनके संरचनात्मक आकार, उनकी विस्तृत अधिकारिता और वर्ष प्रतिवर्ष

उनकी बदतर होती हुई दशा के बारे में गहराई से अध्ययन करने के लिए विभिन्न निकायों द्वारा अब तक किए गए प्रयासों के संक्षिप्त पुनर्विलोकन के प्रति यहां निर्देश कर दिया जाए ।

1.10 उनमें पूर्वतम, जिसके प्रति निर्देश कर दिया जाए, उच्च न्यायालय (मुकदमा बकाया) समिति, 1949 है । उसके द्वारा की गई सिफारिशों की जांच करना अनावश्यक है क्योंकि विधि आयोग ने अपनी चौदहवीं रिपोर्ट में उस निकाय की सिफारिशों की विस्तार से परीक्षा की थी ।

1.11 समय के क्रम से अगला और अपने अधिकतम महत्व की दृष्टि से प्रथम विधि आयोग (भारत) की 1958 की रिपोर्ट है । अध्याय 6 और अध्याय 7 में, उच्च न्यायालयों के कार्यकरण, उनकी संरचना, आकार, उनके द्वारा अनुसरित प्रक्रिया, उनकी आरंभिक, अपीली और सांविधानिक अधिकारिता, उनके कार्य की मात्रा में वृद्धि, विभिन्न विशेष कारणों के अधीन उनकी अधिकारिता के विस्तार के बारे में गहराई से जांच की गई थी । इसने जो दो प्रमुख निष्कर्ष निकाले थे, वे ये थे कि न तो उच्च न्यायालय की संरचना में किसी परिवर्तन की आवश्यकता है और न उनकी व्यापक अधिकारिता में किसी कमी या काट-छांट की आवश्यकता है । उसने इस बात को समझा कि उच्च न्यायालय की न्यायाधीश संख्या की संस्थिति के सतत आरोही ग्राफ को दृष्टि में रखते हुए नियमित पुनर्विलोकन नहीं किया गया है । उसका यह मत था कि उच्च न्यायालयों में अनेक असंतोषजनक नियुक्तियां राजनैतिक, क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक या अन्य आधारों पर की गई हैं जिसका परिणाम यह हुआ है कि योग्यतम व्यक्तियों की नियुक्ति नहीं हुई है । इसके परिणाम-स्वरूप न्यायाधीशों के काम में कमी आई है । उसकी दृष्टि में, उच्च न्यायालय की न्यायाधीश संख्या में वृद्धि तथा सक्षम व्यक्तियों की

शीघ्र नियुक्ति और उच्च न्यायालय के अवकाश दिनों की संख्या में कटौती करने से उन सबके संचयी प्रभाव स्वरूप जमा हुए कार्य को कम करने और उच्च न्यायालय को बढ़ती हुई बकाया के भार और दबाव से मुक्त करने में सहायता मिलेगी । उसने लेटर्स पेटेंट अपीलों के उत्सादन की सिफारिश की । वह उच्च न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता को, जहां भी वह है, बनाए रखने के पक्ष में था ।

1.12 विधि आयोग ने सिविल प्रक्रिया संहिता की बाबत चर्चा में अपील के अधिकार के कम किए जाने के विरुद्ध मत व्यक्त किया, किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता पर कुछ निर्बन्धन लगाने की राय दी । उसने यह अनुभव नहीं किया कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता में कोई कमी की जाए ।

1.13 विधि आयोग रिपोर्ट में वर्णित परिस्थितियों में सिविल प्रक्रिया संहिता पर फिर वापस आया । उसने इस बात पर ध्यान दिया कि अपीली डिक्रियों से अपीलें (द्वितीय अपीलें) प्रायश: बारबार ग्रहण कर ली जाती हैं; कि द्वितीय अपील के अधिकार को परिमित करने और तद्द्वारा उसे उपह्रासित करने के लिए कुछ गुंजाइश है तथा इसके लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 का इस प्रकार संशोधन करना होगा कि अपील केवल मौलिक विधि प्रश्न पर हो सकेगी तथा इस प्रकार अन्तर्वलित विधि प्रश्न अपील के ग्रहण किए जाने के समय निश्चित और विनिर्दिष्ट किया जाएगा तथा अपील इस प्रकार विनिर्दिष्ट विधि प्रश्नों पर सुनी जाएगी । बाद के अनुभव से यह दर्शित हुआ है कि द्वितीय अपीलों के ग्रहण किए जाने के विषय में परिस्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है । इस विनिर्दिष्ट सिफारिश के अति-

निरस्त, अपीलें सुनने की प्रक्रिया में कुछ परिणामी परिवर्तन भी सुझाए गए थे। उच्च न्यायालय की अपील अधिकारिता के आधार पर उपाय के प्रश्न को सुलझाया नहीं गया था।

1.14 विभिन्न उच्च न्यायालयों में मामलों की संचित हो रही बकाया का समस्या से अत्यधिक सरोकार होने के कारण, भारत सरकार ने भारत के तत्कालीन ~~न्यायाधिपति~~ मुख्य न्यायमूर्ति से अप्रैल 1969 में अनुरोध किया कि वे मामलों की बकाया की समस्या पर उसके समस्त पहलुओं से विचार करने और उपचारी उपाय सुझाने के लिए न्यायाधीशों की एक लघु समिति की नियुक्ति करने की वांछनीयता पर विचार करें। इस समिति ने जो शाह समिति के नाम से ज्ञात थी क्योंकि इसके अध्यक्ष भारत के तत्कालीन मुख्य न्याय~~धिपति~~मूर्ति थे जो अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात भी समिति के अध्यक्ष बने रहे, उच्च न्यायालय की अधिकारिता, कार्य के ~~समय~~ संचय के कारणों, मामलों की बकाया की समस्या को सुलझाने में स्पष्ट असमर्थता तथा विषय के सभी सम्बद्ध पहलुओं की विस्तार से पड़ताल की है। जमा हुए मामलों के संचित होने के लिए जिम्मेदार कारणों में, समिति ने यह अवलोकन किया कि जन संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है, उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का असाधारण उपभोग किया जा रहा है, उच्च न्यायालय में विशेष अधिकारिता विनिहित की गई है जैसे कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन निर्वाचन याचिकाओं का उसकी सभी ~~सामान्य~~ इस शर्त के साथ विचारण कि उसका निपटारा उसके संस्थित किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाना चाहिए, आदि, आदि। यद्यपि समिति को इस बात का जानकारी थी कि भारत सरकार ने प्रत्येक उच्च न्यायालय के कार्य की स्थिति का पुनर्विलोकन कर लिया है तथा यह निष्कर्ष निकाला है कि कुछ उच्च न्यायालयों में मामलों की बकाया के संचय का मुख्य कारण न्यायाधीशों की अपर्याप्तता

था जो कि रिक्तियों के भरने में विलम्ब के कारण और अधिक संकुल हो गया था । फिर भी उसने प्रत्येक उच्च न्यायालय की न्यायाधीश संख्या का फिर से पुनर्विलोकन किया और उसके बढ़ाए जाने की सिफारिश की और साथ हा ये गूढ़ शर्त भी बताए कि असंतोषजनक नियुक्तियां न की जाने का प्रयास किया जाना चाहिए । उसने बकाया में कमी करने के लिए कतिपय प्रक्रियात्मक परिवर्तनों का भी सुझाव दिया । समिति ने उच्च न्यायालय की अधिकारिता के उपहास पर गंभीरतापूर्वक विचार किया तथा यह अवलोकन करके कि कर विधियों के अधीन निर्देश प्रक्रिया, विधि की उस शाखा के मामलों के निपटारे में घोर विलम्ब के लिए जिम्मेदार है, यह सिफारिश की कि आय-कर अपील अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उच्च न्यायालय को अपील की जाने का अधिकार प्रदान करके उस प्रक्रिया का प्रतिस्थापन कर दिया जाए । उसने यह सिफारिश भी की कि पेटेंट और डिजाइन अधिनियम, उत्तराधिकार अधिनियम तथा विवाह विच्छेद अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता को अपील अधिकारिता से प्रतिस्थापित कर दिया जाए तथा आरंभिक अधिकारिता यथास्थिति, जिला न्यायालय / नगर सिविल न्यायालय को प्रदान कर दी जाए । वह सेवा अधिकरणों की स्थापना की जाने के पक्ष में थी, जो सिफारिश अब प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधिनियमन द्वारा कार्यान्वित हो गई है । किंतु साथ ही उच्च न्यायालय की अधिकारिता के विलोपन की सिफारिश न होने से, इस बात की पूर्ण संभावना थी कि सेवा अधिकरण के विनिश्चय पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष

आक्षेप किया जाता जिससे मुकदमे का एक और प्रक्रम जुड़ जाता । यह स्थिति और तेजी से बिगड़ती रही ।

1.15 मामलों की बढ़ती हुई बकाया से न्यायिक प्रणाली के निरन्तर अधिभारित होते रहने के प्रति विधि आयोग का ध्यान बारबार आकृष्ट हुआ । सन् 1974 में, आयोग ने, विधि सम्मत शासन की धारणा को इस देश में सुसंगत, सुसंबद्ध और स्थायी बनाने के लिए भारत के उच्च (तम) न्यायालय की प्रशंसा करने के पश्चात् न्याय प्रशासन में बढ़ते हुए बकाया मामलों की समस्या के प्रति अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता था । उसने यह अवलोकन किया कि "ये बकाया मामले कुछ हद तक ~~सर्कमंजक~~ भयंकर स्थिति तक पहुंच गए हैं।"[12] तदनुसार, उसने उच्चतर न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता का मूल्यांकन करनेके लिए जिसके अन्तर्गत अनिवार्यतः उच्च न्यायालय संस्था आती है, प्रयास आरंभ किया । फिलहाल उच्चतम न्यायालय से संबंधित सिफारिशों को न छोड़ते हुए, आयोग ने उच्च न्यायालय की बाबत चिन्तन करते हुए इस मत का कुछ परिवर्तन के साथ ~~अभि~~ समर्थन किया कि आय-कर अधिनियम, 1961 के अधीन निर्देश की प्रक्रिया का आय-कर अपील अधिकरण के विनिश्चय से सारवान् विधि प्रश्न पर उच्च न्यायालय को अपील से प्रतिस्थापित कर दिया जाए। साथ ही, उसने केन्द्रीय कर न्यायालय की प्रस्थापना को भी अस्वीकृत कर दिया । उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय को अतिरिक्त अपील की जा सकेगी, यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर देता है कि मामले में सार्वजनिक महत्व का सारवान् विधि प्रश्न अन्तर्वलित है जिसका विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किए जाने की आवश्यकता है । यह संविधान के संशोधित अनुच्छेद 133 के अनुरूप है । एक नैमित्तिक अवलोकन यह भी किया गया था कि ऐसी कार्यप्रणाली तैयार

करना उपयुक्त होगा जिससे श्रम विधियों के अधीन मामलों में उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में अन्तर्वाह को कम करने की दृष्टि से सामूहिक ठहराव को प्रोत्साहन और बल मिले । उसने सेवा अधिकरणों की स्थापना के विरुद्ध तथा परिक्षेत्रीय अपील न्यायालयों के सृजन के विरुद्ध मत व्यक्त किया । यहां यह पहली बार उच्च न्यायालय के विकल्पों के रूप में विशेषज्ञ अधिकरण बनाने के लिए सूत्र रूप में है ताकि उच्च न्यायालय की अधिकारिता में कमी होकर कार्य के अन्तर्वाह को नियंत्रित किया जाए जिससे कि ~~परोक्षरूप से~~ मामलों की बकाया और जमा की समस्या का समाधान करने में परोक्ष रूप से मदद मिले ।

1.16 अंतिम वर्णित रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने से पांच वर्ष की अवधि के भीतर, भारत विधि आयोग ने न्यायिक प्रशासन की प्रणाली का पुनर्विलोकन करते रहने के अपने नीति परक विनिश्चय के अनुरूप, जिससे कि न्यायालयों में विलम्ब की समाप्ति और बकाया का शीघ्रता से निपटारा किया जा सके, अपना ध्यान "उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलम्ब तथा बकाया" पर केन्द्रित किया[13]। समस्या को हल करने तथा सुसंगत समय पर आयोग के समक्ष प्रस्तुत की गई परिस्थिति के समाधान के गत प्रयासों का पुनर्विलोकन करने के पश्चात्, उसने सर्वप्रथम उच्च न्यायालयों को प्राप्त अधिकारिताओं की विपुलता और इतिहास में उसके मूलोद्गम की ओर ध्यान दिया । इसके अतिरिक्त उसने संविधान के प्रारंभ से लेकर उच्च न्यायालयों में हुई मुकदमों की भरमार की ओर ध्यान दिया । तत्पश्चात् उसने अपने से एक प्रश्न किया, जो कि आयोग के अनुसार न्यायिक विलम्ब की जांच करने वाली सभी समितियों और आयोगों के समक्ष भी था, कि न्याय का उसकी सत्वरता से सामंजस्य कैसे

किया जाए तथा न्याय की गुणवत्ता को कायम रखते हुए मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए कौन से उपाय सुझाये जाएं । इस विषय में लगभग आश्वस्त होते हुए कि उच्च न्यायालयों को दुस्साध्य अधिकारिता प्राप्त है, ~~उसने~~ फिर भी वर्तमान स्कीम के अधीन अपील के अधिकार में कमी की जाने के विरुद्ध मत तो व्यक्त किया किन्तु उच्च न्यायालयों में अपीलों की सुनवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में कुछ उपान्तीय परिवर्तन सुझाये । उसने केन्दीय कर न्यायालय की स्थापना के विरुद्ध मत दुहराया और इस विषय में कोई राय व्यक्त नहीं की कि क्या आयकर अधिनियम, 1961 के अधीन निर्देश की प्रक्रिया के स्थान पर आयकर अपील अधिकरण के विनिश्चय से सारवान् विधि प्रश्न पर उच्च न्यायालय को अपील का उपबंध कर दिया जाए। आयोग ने पूर्वतर दृष्टिकोण को दुहराया कि रिक्तियों को तुरंत भर लिया जाए और उक्त न्यायालय की न्यायाधीश संख्या का समय समय पर पुनर्विलोकन किया जाए तथा मामलों की बकाया की समस्या का मुकाबला करने के लिए तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति भी की जाए ।

1.17 चूंकि परिस्थिति में कोई सुस्पष्ट परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा था, अतः भारत सरकार ने मामलों की बकाया की समस्या की जांच करने और उपचारी उपाय सुझाने के लिए तीन भिन्न-भिन्न न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों की एक अनौपचारिक समिति का गठन किया । समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करके विनिर्दिष्ट रूप से इस बात पर जोर दिया कि उच्च न्यायालय की न्यायाधीश संख्या अपर्याप्त है और उसमें हुई रिक्तियों को भरने में अत्यधिक विलम्ब होता है तथा ये ही दो प्रधान कारण हैं जिनसे उच्च न्यायालयों में

बकाया मामले संचित हो जाते हैं । उसने उच्च न्यायालय में नियुक्ति के विषय में कुछ उपान्तिक परिवर्तनों की सिफारिश की । उसने यह सिफारिश की कि जहाँ मूल वाद की विषयवस्तु 10,000 रुपए से अधिक की नहीं है वहाँ द्वितीय अपील का उत्सादन कर दिया जाए । उसने यह सिफारिश की कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 का जो उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण की अधिकारिता प्रदान करती है, संशोधन करके उसे सिविल प्रक्रियासंहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 3 के अनुरूप बना दिया जाए । उसने लेटर्स पेटेन्ट अपील के उत्सादन की सिफारिश की । उसकी यह राय थी कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन निर्वाचन याचिकाओं के विषय में कार्यवाही करने के लिए तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाए । उसका यह दृढ़ मत था कि दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई, मद्रास, हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर स्थित उच्च न्यायालयों को प्राप्त मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का उत्सादन कर दिया जाए । अन्य उपांतिक सिफारिशें भी की गई थीं जो उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के संबंध में थीं ।

1.18 विधि आयोग ने अप्रैल, 1984 में जो आनुषंगिक रिपोर्ट दी थी, उसका संक्षेप में उल्लेख कर दिया जाए । उसने यह सिफारिश की थी कि पक्षकारों से यह अपेक्षा की जाए कि वे उच्च न्यायालयों के समक्ष आने वाली प्रथम अपीलों, पूंजी मामलों और अन्य जटिल मामलों के संबंध में उच्च न्यायालयों में लिखित पक्षसार फाइल करें और मौखिक बहस का कम से कम आश्रय लें । आयोग के अनुसार, इससे समय की बचत होगी जिससे कि न्यायाधीश ~~मामलों की~~ मामले बकाया के विषय में कार्यवाही कर सकें ।

1.19 न्यायालयों में मामलों की बकाया के उत्तरोत्तर अनुवर्धन का मुकाबला करने के लिए समितियों और आयोगों

द्वारा जो गत प्रयास और प्रयत्न किए गए थे, उनका यह संक्षिप्त पुनर्विलोकन है । इसके कारण न्याय प्रणाली पर असह्य भार पड़ता है जिससे कि न्याय के उपभोक्ताओं (वादकर्ताओं) के मन में इस प्रणाली की दक्षता का ह्रास होता है और उसकी प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता घटती है ।

1.20 वर्तमान विधि आयोग को न्यायिक सुधारों का अध्ययन करने का काम सौंपे जाते हुए, उससे विनिर्दिष्ट रूप से यह अपेक्षा की गई थी कि वह न्यायिक सोपान के भीतर ऐसे स्तर या प्रणालियाँ स्थापित करने के बारे में ऐसी साध्यता संबंधी रिपोर्ट तैयार करे जिससे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा घट जाए"। वर्तमान आयोग ने सभी गत रिपोर्टों का सतर्कतापूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् सिफारिशों का विश्लेषण और मूल्यांकन किया; उनके कार्यान्वयन के बारे में पूर्णतम जाँच की, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में मामलों की बकाया और जमा हुए मामलों की वर्तमान निराशाजनक और दीन अवस्था की ओर ध्यान दिया तथा अपने से पहला प्रश्न किया कि क्या किन्हीं बाह्य परिवर्तनों से परिस्थिति में सुधार होने की संभावना है । गत प्रयासों को ध्यान में रखते हुए और अपनी प्रथम रिपोर्ट में उपवर्णित अपने स्थूल रूप से कथित दृष्टिकोण से संगतिपूर्वक इसने यह निश्चयात्मक निष्कर्ष निकाला कि न्यायालयों की न केवल निम्नतम सोपान से आमूल पुनर्संरचना आवश्यक है जिससे स्वयं उच्च न्यायालयों में कार्य के आगमन और तदुपरान्त उच्चतम न्यायालय में पहुँचने की नियामक प्रक्रिया उपबंधित हो जाएगी, किन्तु उच्च न्यायालय को प्राप्त व्यापक अधिकारिता पर भी सूक्ष्मता से विचार किए जाने और तत्पश्चात् अद्यावधि इस संपूर्ण उत्पत्तिवादी दृष्टिकोण पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है कि उच्चन्यायालय को प्राप्त अधिकारिता

पुण्यकर्म है । संसार भर से प्राप्त इस अनुभव को दृष्टि में रखते हुए कि सामान्य न्यायालयों को कुछ हद तक अपना स्थान विशिष्ट न्यायालयों/ अधिकरणों के लिए छोड़ना पड़ता है; साथ ही सामान्य न्यायालयों, अर्थात् उच्च न्यायालयों की अधिकारिता तदनुसार कारगर रूप से कम होती जाती है । केवल एक उदाहरण दृष्टव्य है : आस्ट्रेलिया में, इन क्षेत्रों के प्रशासन के लिए, सुस्थापित न्यायालयों से भिन्नतया नए अधिकरणों का सृजन किया गया है । उनमें से कुछ के नाम प्रशासनिक अपील अधिकरण, माध्यस्थम् अधिकरण, कर्मकार प्रतिकर अधिकरण, पेंशन अधिकरण, योजना अपील अधिकरण, समान अवसर अधिकरण हैं । अधिकरण बनाने की गतिविधि इस विश्वास पर आधारित है कि सुस्थापित न्यायालय अति दूरवर्ती, अतिविधिपरायण, अति खर्चीले और सर्वोपरि, अति मंदगामी होते हैं ।"[16] अत: जब तक कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता में सारभूत कमी नहीं की जाती है और साथ ही, उच्च न्यायालयों को प्राप्त वैधिक पुनर्विलोकन के लिए कारगर वादस्थान का उपबंध नहीं किया जाता है तब तक बाह्य उपांतिक परिवर्तनों से परिस्थिति में सुधार होने की संभावना नहीं है तथा जो परिस्थिति कभी "भयंकर" मानी जाती थी, उसे अब विध्वंसक, संकटापन्न, लगभग अप्रबंध्य और प्रणाली पर इतना अपरिमित भार अधिरोपित करने वाली कही जा सकती है कि उसके कारण भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति को यह प्रबोधन करना पड़ा कि "प्रणाली ध्वस्त होने वाली है"।[18] जिस प्रयास से सदैव बचना पड़ा वह था स्वतंत्रताप्राप्ति तक उच्च न्यायालयों के प्रति गहरी श्रद्धा के कारण उनकी अधिकारिता का कम किया जाना क्योंकि इतनी दूरस्थित होने के कारण कि वह तक पहुँचा ही न जा सके, प्रिवी काउंसिल दूरवर्ती स्वप्न थी । किन्तु इस सुस्पष्ट गंभीर रोग के लिए प्रणाली की रक्षार्थ तीक्ष्ण उपचार की और उसे पुन: वह गौरव प्रदान

किए जाने की आवश्यकता है तो उसे पहले कभी प्राप्त था ।

1·21 उच्च न्यायालय राज्य न्यायिक तंत्र के शीर्षस्थ होता है । प्रत्येक राज्य का एक उच्च न्यायालय होगा ।(19) प्रत्येक उच्च न्यायालय में परमाधिकार रिटें जारी करने की सांविधानिक शक्ति निहित है।(20) प्रत्येक उच्च न्यायालय का उन राज्यक्षेत्रों भर में, जिनके संबंध में वह उपधारिता का प्रयोग करती है, सभी न्यायालयों और अधिकरणों पर अधीक्षण होगा(21) प्रत्येक उच्च न्यायालय में राज्य के सभी अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण होना निहित है और यह नियंत्रण न्यायिक विनिश्चयों के कारण अत्यंत विस्तृत और व्यापक हो गया है(22) सिविल और दाण्डिक दोनों प्रकार के न्याय प्रणाली में उच्च न्यायालय को या तो अपील या पुनरीक्षण का उपबंध है जो सिविल विवादों की प्रकृति, विचारण या न्यायालय की अधिकारिता तथा उस न्यायालय के स्तर पर निर्भर करता है जहां आपराधिक मामले का विचारण किया जाता है । अतः जब तक कि उस आधारिक स्तर की, जहां कि मुकदमा आरंभ किया जाता है और वह अपील या पुनरीक्षण के रूप में उदग्रत आगे उच्च न्यायालय की ओर बढ़ता है, पुनर्संरचना नहीं की जाती है और यह प्रफलनात्मक अपील अधिकारिता या तो नियंत्रित या ह्रासित नहीं की जाती है, तब तक उच्च न्यायालय में कार्य का अंतर्वाह न तो विनियमित किया जा सकता है और न घटाया जा सकता है । विधि आयोग का यह निश्चत मत है कि जहां भी संभव हो, प्रफलनात्मक अपीली और व्यापक आरंभिक अधिकारिता को न्याय की गुणवत्ता का ह्रास किए बिना नियंत्रित या कम किया जाना चाहिए ।

1·22 समस्या पर इस दृष्टि से विचार करते हुए, विधि आयोग ने न्यायपालिका की निम्नतम सोपान के स्तर पर जहां पर कि अधिकतम मुकदमे आते हैं, पुनर्संरचना की जाने की सिफारिश की और साथ ही यह सिफारिश की कि इस पुनर्संरचित निम्नतम सोपान न्यायपालिका द्वारा, जिसका नाम "ग्राम न्यायालय" दिया गया है, सभी सविय मामलों में

जिला न्यायालय को केवल एक पुनरीक्षण अर्जी और उच्च न्यायालय को कोई अपील नहीं होनी चाहिए। [23] जब यह सिफारिश कार्यान्वित की जाएगी तब वह उच्च न्यायालयों में द्वितीय अपीलें और सिविल तथा दांडिक पुनरीक्षण अर्जियाँ दायर की जाने के विषय में गहरा प्रभाव डालेगी।

1·23 इसके पश्चात् आयोग ने विभिन्न प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर विधियों के अधीन मुकदमों के सदा वर्धमान क्षेत्र की ओर ध्यान दिया । कर विधियों के अधीन मुकदमों के निपटारे में विलम्ब का राज्य के राजस्व पर क्षीणकारी तथा विलम्ब से हुए निपटारे का निर्धारितियों

पर भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, लोहिया मशीन्स लिमिटेड बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के पश्चात्, जिसने कि इस मत को कायम रखा कि धारा 80 के प्रयोजनों के लिए किसी औद्योगिक उपक्रम में नियोजित पूंजी का अवधारण करते समय, निर्धारितियों द्वारा उधार लिए गए धनों और देय ऋणों की, संगणना अवधि के प्रथम दिन को यथा विद्यमान, संकलित रकमों की कटौती की जाएगी, अनेक कंपनियों को इस तथ्य की दृष्टि से भारी वित्तीय हानि हुई कि वर्ष प्रतिवर्ष उनके लेखे मामले के भिन्न दृष्टिकोण के आधार पर, अर्थात् इस आधार पर कि उधार लिए गए धन या ऋण अपवर्जित नहीं किए जाने थे, बन्द किए गए थे। इस मामले में विलम्ब के कारण निर्धारितियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके विपरीत, राज्य को अप्रत्यक्ष करों के 3,800 रुपए की रकम वसूल करने से व्यादिष्ट किया गया था। यह बात संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से आयोग के ध्यान में लाई गई थी कि कर सम्बन्धी मुकदमों के निपटारे में उच्च न्यायालय के स्तर पर विलम्ब इस कारण से होता है कि भारतीय आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 के अधीन निर्देश प्रक्रिया बेढंगी और विलम्बकारी है तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में विद्यमान विरोध उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। इसका विकल्प यह था कि एक केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना की जाए जो प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर अधिरोपित करने वाली विधियों के अधीन निर्देशों का तथा आयात और निर्यात विधानों के अधीन उद्भूत होने वाले विवादों पर अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में कार्रवाई करे। पूर्वतर आयोगों और समितियों को केन्द्रीय कर न्यायालयों की सिफारिश करने में संकोच प्रतीत हुआ था, उससे यह दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था। एक व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिसके द्वारा केन्द्रीय कर न्यायालयों की स्थापना करने और साथ ही रिपोर्ट के अन्तर्गत आए विषयों

में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता निरस्त करने की सिफारिश की गई थी ।[25]

1.24. संविधान के भाग 4 में प्रतिपादित राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त राज्य से यह अपेक्षा करते हैं कि वह सामाजिक और समाजार्थिक न्याय के लिए ठोस कार्यवाही करे । अत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रम विधियों की प्रचुरता से संवृद्धि हुई । "औद्योगिक और श्रम विवाद" के समवर्ती सूची का विषय होने के कारण, केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों दोनों ने अनेक श्रम विधियां अधिनियमित कीं और उन विधियों के अन्तर्गत उद्भूत होने वाले विवादों का समाधान करने के लिए विशेष तन्त्र, जैसे कि श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण/न्यायालय, मजदूरी बोर्ड और राष्ट्रीय अधिकरण की स्थापना की । कुछ राज्यों के कुछ अपवादों को छोड़ कर इन अधिकरणों के विनिश्चयों के लिए किसी अपील न्यायपीठ का उपबन्ध नहीं था । परिणामत: ऐसे न्यायालय/अधिकरण के प्रत्येक विनिश्चय पर साधारणतया उच्च न्यायालय या भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेप किया गया । उच्च न्यायालय के मुकदमों की बकाया की समस्याओं पर विचार करने वाले आयोगों और समितियों ने श्रमविधियों के अधीन उच्च न्यायालयों में बढ़ रही इस मुकदमों की संख्या पर ध्यान केन्द्रित किया । पूर्वतर प्रयासों में तो इस बाबत कोई ठोस सुझाव दृष्टिगोचर नहीं हुए कि मुकदमों की इस शाखा से किस प्रकार निपटा जाए । प्रस्तुत विधि आयोग ने न्यायिक अधिक्रम के अन्तर्गत नि:श्रेणियां या विशेषज्ञ प्रणालियां स्थापित करने के विचार पर चर्चा के अनुक्रम में, एक दृष्टिकोण अपनाया जिसके लागू किए जाने पर वे क्षेत्र उपदर्शित हो जाएंगे जहां ऐसी मध्यवर्ती नि:श्रेणियां या प्रणालियां स्थापित की जा सकती हैं और साथ ही उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन किया जा सकता है । ऐसा एक क्षेत्र श्रम विधियों के अधीन वादकरण है । सिद्ध करने के लिए अनेक कारणों की

आवश्यकता नहीं है कि श्रम विधियों के अन्तर्गत वादकरण का प्रबंध करने के लिए न केवल श्रमविधियों का अपितु आर्थिक आयोजना, मुद्रा एवं राजवित्तीय नीतियों, औद्योगिक प्रसार और बजट सूत्रों तथा सर्वोपरि उद्योग में शान्ति और सामंजस्य का भी विशेषज्ञीय ज्ञान अपेक्षित है ताकि उत्पादकता वृद्धि को बढ़ावा मिले। मात्र यह बात कि श्रम विधियों के अन्तर्गत वादकरण, शुरुआत से ही, सिविल न्यायालयों की, जो कि सामान्य न्यायालय थे, अधिकारिता से अपवर्जित रहा और उसे उन कानूनों के अधीन स्थापित विशेषज्ञ न्यायालयों को न्यस्त किया गया था, यदि आवश्यकता हो तो इस बात का सबूत है कि यह विशेषज्ञ अधिकारिता का क्षेत्र है। तदनुसार, विधि आयोग ने श्रम विधियों के अधीन वादकरण के स्वरूप, उसकी बाबत कार्यवाही करने के लिए आवश्यक उपस्कर, विभिन्न उच्च न्यायालयों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण तथा अन्य आनुषंगिक और प्रासंगिक पहलुओं की गहराई से जांच की तथा राज्य और केन्द्रीय स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग स्थापित किए जाने की सिफारिश की। साथ ही, यह सिफारिश की कि श्रम विधियों के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन कर दिया जाए और संविधान के अनुच्छेद 226 और

अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता समाप्त कर दी जाए।

1.25. ऐसे विषयों के लिए अनुसंधान जारी रखते हुए जिनका विशेषज्ञ न्यायालय/अधिकरण के लिए छोड़ा जाना वांछनीय होगा, आयोग के समक्ष अनेक ऐसे विवाद आए जो शिक्षा के क्षेत्र में उत्पन्न हुए थे तथा वर्ष प्रति वर्ष उच्च न्यायालयों के समक्ष लाए गए थे। आयोग के पास तो दृष्टिकोण निर्धारित करने के लिए कोई साधन सामग्री थी नहीं, अतः वह एक ऐसी संगोष्ठी में जिसमें कि अच्छी उपस्थिति थी, तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों के अनेक कुलपतियों और शिक्षा के क्षेत्र के अन्य विशेषज्ञों के साथ [illegible]

के क्षेत्र के वादकरण के स्वरूप और उसके प्रति उच्च न्यायालय की अनुक्रिया की गहराई से पड़ताल की । आयोग ने अपना यह विश्वास करा दिए जाने पर कि शिक्षा के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले विवादों की बाबत विशेषज्ञीय दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है, यह सिफारिश की कि राज्य और केन्द्रीय स्तर पर शिक्षा अधिकरण स्थापित किए जाएं तथा उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन कर दिया जाए ।[27]

1.26. इस बात का निदान करते समय कि उच्च न्यायालयों की समस्या क्या है, समितियों और आयोगों ने गत समय में व्यापक रूप से अपना ध्यान न्यायाधीशों की अपर्याप्त संख्या तथा रिक्तियों को करने में होने वाले अत्यधिक विलम्ब पर केन्द्रित किया है । प्रमुख सिफारिशों में से सभी, उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया को सरल बनाने, तत्समय अनुभूत बाधाओं को दूर करने तथा उच्च न्यायालय की न्यायाधीश संख्या के समय समय पर पुनर्विलोकन और उसमें बढ़ोतरी के लिए उद्दिष्ट थीं । आयोगों और समितियों के अलावा भी, संसद की प्राक्कलन समिति ने उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया के निरसन की जोरदार सिफारिश की थी क्योंकि उसकी राय यह थी कि वर्तमान प्रक्रिया गत प्रयोग हो चुकी है और बेढंगी है ।[28] यह प्राख्यान करते समय कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संविधान में विहित प्रक्रिया बेढंगी और विलम्बकारी है, किसी आनुकल्पिक प्रक्रिया की प्रकल्पना और सिफारिश नहीं की गई । उन विनिर्दिष्ट समस्याओं, अर्थात् रिक्ति के भरे जाने में अत्यधिक विलम्ब, न्यायाधीश संख्या का पुनर्विलोकन करने और वाद संस्थित के अनुरूप संख्यावृद्धि की मंजूरी में असफलता का अभिनिश्चय करने के इस नैदानिक प्रयास से

सहमत होते हुए, आयोग ने उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए संविधान में विहित वर्तमान प्रक्रिया की गहराई से पड़ताल की । यह प्रतीत हुआ कि प्रक्रिया बेढंगी और विलम्बकारी है तथा इस बाबत हुई असफलता स्पष्ट की है जिससे शेष रहे वादों की समस्या में और वृद्धि हुई । अतः विधि आयोग ने व्यापक रिपोर्ट तैयार और प्रस्तुत की जिसके द्वारा उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति की प्रक्रिया में तथा न्यायाधीश संख्या का नियमित अंतरालों पर पुनर्विलोकन किए जाने की पद्धति में आमूल सुधार किए जाने की सिफारिश की गई ।[29] इस प्रकार विधि आयोग ने न केवल समस्याओं का विनिर्दिष्ट करने अपितु परिस्थिति का सुधार करने के ठोस उपचारी उपाय सुझाने का भी ध्यान रखा ।

1·27 संक्षेपतः आयोग का दृष्टिकोण अपीलों की संख्या घटाना, विशेषज्ञ न्यायालय/अधिकरण स्थापित करना और साथ ही उच्च न्यायालय की अधिकारिता निरस्त करना है । प्रस्तुत विधि आयोग द्वारा उपस्थापित की गई रिपोर्टों के कार्यान्वयन द्वारा इन सिफारिशों के कार्यरूप में परिणत किए जाने पर, इससे अत्यंत उपरिष्ट अनुमान के अनुसार, उच्च न्यायालय में कार्य का अंतर्वाह उसके वर्तमान अंतर्वाह से लगभग 45 प्रतिशत कम हो जाएगा । भारत सरकार ने हाल ही में प्रत्येक उच्च न्यायालय की न्यायाधीश संख्या का पुनर्विलोकन करके उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के 81 अधिक पद मंजूर किए हैं । यदि ये नवसृजित पद शीघ्र ही भर लिए जाते हैं और वर्तमान रिक्तियां भी शीघ्र ही भर ली जाती हैं तथा साथ ही विशेषज्ञ अधिकरणों की स्थापना कर दी जाती है तो आकलित प्रभाव के रूप में, उन सब से उच्च न्यायालय वर्तमान वाद करण से प्रभावी रूप में और शीघ्र ही निपटने में समर्थ हो सकेगा और साथ ही शेष रह गए मुकदमों की संख्या भी घट जाएगी ।

1·28 किन्तु प्रश्न तो यह रह जाता है कि क्या कुछ और भी किए जाने की आवश्यकता है ? प्रस्तुत रिपोर्ट इसी विषय के बारे में है ।

अध्याय 2

न्यायालयों में विलम्ब होने के मुख्य कारण जिनका पहले अवलोकन किया गया है।

2.1 प्रथम विधि आयोग की नियुक्ति का उद्गम 19 नवम्बर, 1954 को लोक सभा में प्रस्तावित किए गए एक गैर सरकारी संकल्प में निहित है। यह संकल्प इस प्रकार है :

"यह सदन संकल्प करता है कि दाण्डिक, सिविल, और राजस्व, मूल, प्रक्रियात्मक या अन्य प्रकार की विधियों के तथा विशिष्टत: सिविल प्रक्रिया संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय दंड संहिता के पुनरीक्षण तथा आधुनिकीकरण की बाबत सिफारिश करने, निर्णयज विधि के परिमाण को कम करने तथा अनेक मुद्दों पर उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में विरोधों को यह सिद्ध करने की दृष्टि से कि न्याय सरल, सत्वर, सस्ता, प्रभावी और सारवान है, सुलझाने के लिए एक विधि आयोग नियुक्त किया जाए।"

इस संकल्प के अनुसरण में अगस्त 1955 में तत्कालीन विधि मंत्री ने लोक सभा में एक बयान दिया जिसमें विधि आयोग की नियुक्ति करने संबंधी भारत सरकार के निर्णय की घोषणा की गई थी। इसका प्रथम निर्देश पद था "न्याय-प्रशासन पद्धति का उसके सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए पुनर्विलोकन करना तथा उसमें सुधार लाने और उसे सत्वर तथा कम खर्चीला बनाने के अर्थोपायों का सुझाव देना।" विधि आयोग ने अपने प्रथम निर्देश पद के प्रति निर्देश से, न्याय प्रशासन पद्धति की, जिसकी परिधि के अंतर्गत मूल एवं प्रक्रियात्मक विधियों का प्रवर्तन और प्रभाव भी है, इस दृष्टि से जांच करना प्रारंभ किया कि अनावश्यक मुकदमेबाजी खत्म की जाए, मुकदमों का शीघ्र निपटारा किया जाए और न्याय को कम खर्चीला बनाया जाए। अपनी जांच की परिधि में उसने न्यायपालिका में भर्ती की प्रक्रिया की बाबत जांच

को भी सम्मिलित कर लिया ।

2.2 विधि आयोग ने मुकदमा परक प्रक्रियाओं में अन्तर्वलित विलम्ब और खर्च के प्रश्न की परीक्षा करते समय बहु-आयामी दृष्टिकोण अपनाया । अन्य बातों के साथ-साथ, विधि आयोग का यह मत था कि ऐसी समय-सीमाएं अधिकथित करना संभव है जिसके भीतर विभिन्न वर्गों की न्यायिक कार्यवाहियों को सामान्यत: पूरा कर दिया जाना चाहिए । जहां तक मुंसिफ के न्यायालय का संबंध है, विधि आयोग का यह मत था कि किसी भी प्रतिवादित नियमित वाद का निपटारा एक वर्ष के भीतर कर दिया जाना चाहिए और यदि विचारण न्यायालय किसी अधीनस्थ न्यायाधीश का ही न्यायालय हो तो वाद का निपटारा डेढ़ वर्ष के भीतर अवश्य कर दिया जाना चाहिए । यह अवधारित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष आने वाले विभिन्न प्रकार के मुकदमों की सामान्य अस्तित्व अवधि कितनी होनी चाहिए । किंतु यदि विचारण न्यायालय में किसी वाद का निपटारा आदर्शत: डेढ़ वर्ष के भीतर पूरा किया जा सकता है तो द्वितीय अपील का निपटारा उसकी आधी अवधि के अन्दर कर दिया जाना चाहिए । आज की स्थिति को इस भीषण तथ्य से ठीक ठीक समझा जा सकता है कि 31 दिसम्बर, 1985 तक दस वर्ष पुरानी लगभग 5,461 द्वितीय अपीलों का निपटारा किया जाना शेष था । इसी प्रकार, इसी तारीख तक लगभग 5,680 प्रथम अपीलों का निपटारा किया जाना शेष था । संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि इसी तारीख अर्थात् 31 दिसम्बर, 1985 तक[2] दस वर्ष पुराने लगभग 30,183 मुकदमें उच्च न्यायालयों में लंबित थे।

2.3 उस समय भी जब स्थिति इतनी निराशाजनक नहीं थी और जब उच्च न्यायालय में विलम्ब और मुकदमों की बकाया के प्रश्न पर विचार करते समय, इस समस्या के, उसके सभी पहलुओं [illegible] से हल करने के लिए विधि आयोग की नियुक्ति के रूप में

सम्मिलित प्रयास किया गया था, प्रथम विधि आयोग ने दो अत्यधिक महत्वपूर्ण सिफारिशें की थीं, जो इस प्रकार थीं कि (1) उच्च न्यायालयों में रिक्तियों के भरे जाने में विलम्ब उच्च न्यायालयों में बकाया मुकदमों के जमा होने के लिए बहुत अधिक जिम्मेदार है, और (2) प्रत्येक उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की अपर्याप्त संख्या है जो काम के भार के अनुरूप नहीं है। संयोगवश, यह मत व्यक्त किया गया था कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद विधिज्ञ वर्ग के वरिष्ठ सदस्यों के लिए आकर्षक नहीं रह गया है, इसलिए उनके वेतन, पेंशन और प्रसुविधाएं तथा सेवानिवृत्ति की आयु सहित उनकी सेवा की शर्तों को यथोचित रूप में पुनरीक्षित किया जाना चाहिए। यह भी निष्कर्ष निकला कि जाति, साम्प्रदायिक और यथा-कदा राजनैतिक कारणोंवश भी असंतोषजनक न्यायिक कार्मिकों[3] का चयन हुआ है।

2.4 उच्च न्यायालयों के संबंध में सभी पश्चात्‌वर्ती सिफारिशों में यही विचार-दृष्टि परिव्याप्त रही है। इस बात के सुझाव दिए गए कि उच्च न्यायालयों और भारत के उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में यह परम्परा डाली जानी चाहिए कि कार्य-पालिका का कम से कम हस्तक्षेप हो। न्याय प्रशासन पर विधि आयोग की प्रथम रिपोर्ट से अब तक लगभग तीन दशक बीत चुके हैं। इन तीन दशकों के दौरान उच्च न्याया-लयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा-शर्तों में सुधार किए जाने और साथ ही, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या का पुन-र्विलोकन कर उसमें वृद्धि की जाने के प्रयास किए गए। इस संबंध में अभी हाल ही में किए गए कुछ विनिर्दिष्ट प्रयासों पर

ध्यान दिया जाना चाहिए। संसद् ने उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) संशोधन अधिनियम, 1986 अधिनियमित किया है। संसद् ने संविधान(चौवनवां संशोधन) अधिनियम, 1986 द्वारा संविधान की दूसरी अनुसूची के भाग -घ को भी संशोधित किया है। इस संविधान संशोधन द्वारा, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्तियों तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और न्यायमूर्तियों के वेतन पुनरीक्षित किए जाकर बढ़ाए गए हैं और दोगुने से भी अधिक कर दिए गए हैं। 1986 के संशोधन अधिनियम द्वारा, उच्चतम-न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों को, जिनके अंतर्गत मुख्य न्यायमूर्ति भी हैं, अनुज्ञेय पेंशन का सारभूत पुनरीक्षण किया गया है। सेवा की अन्य शर्तें, जैसे छुट्टी, यात्रा भत्ता और उपदान को भी यथोचित रूप से पुनरीक्षित किया गया है। प्रयास यह था कि उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों के पद उससे अधिक आकर्षक बन जाएं जितने कि वे आज हैं।

2.5 उच्च न्यायालयों में मुकदमों की बकाया के लिए जिम्मेदार दूसरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण, जो आम तौर से पाया जाता है, यह है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय में तथा उच्चतम न्यायालय में भी न्यायाधीशों की संख्या का उनके बढ़ते हुए कार्यभार के अनुरूप समय-समय पर पुनरीक्षण नहीं किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 124(1) में यह उपबंधित है कि भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और, जब तक संसद् विधि द्वारा अधिक संख्या विहित नहीं करती है, तब तक सात से अनधिक अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा।

संसद् ने चार भिन्न-भिन्न अवसरों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि मंजूर की है, अर्थात् सन् 1956 में यह संख्या सात से बढ़ाकर दस की गई, सन् 1960 में दस से तेरह, सन् 1977 में तेरह से सत्रह और सन् 1986 में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के अतिरिक्त यह संख्या सत्रह से बढ़ाकर पच्चीस की गई थी। इसी प्रकार, अभी हाल ही में मार्च, 1987 में, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या को 81 पद मंजूर करके और बढ़ाया गया है जिनमें स्थायी न्यायाधीशों के 25 पद और अपर न्यायाधीशों के 56 पद समाविष्ट हैं। अत: ,यह कहा जा सकता है कि बकाया मुकदमे जमा होने के लिए जिम्मेदार माने गए कारणों में से एक को दूर करने के प्रयास किए गए हैं। बकाया मुकदमे जमा होने के लिए जिम्मेदार पाए गए दूसरे कारण का उपांग है रिक्त स्थानों के भरे जाने में अत्यधिक विलम्ब और असन्तोषजनक नियुक्तियों का होना। विधि आयोग ने इस पक्ष की व्यापक रूप से पड़ताल की है। संक्षेप में, यह सिफारिश की गई है कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में रिक्तियों के भरे जाने के प्रश्न पर शीघ्रता से कार्यवाही करने के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग का गठन किया जाए। इस प्रकार, बकाया मुकदमों के जमा होने के लिए जिम्मेदार पाए गए कारणों को दूर करने के लिए एक व्यापक कार्य पद्धति की सिफारिश की गई है और उसे कार्यान्वित किया जाना है।

2.6 अत:, यह कहा जा सकता है कि विधि आयोग ने बकाया मुकदमों की समस्या पर सभी संभव दृष्टिकोणों से विचार कर लिया है और मोटे तौर पर, न्यायालयों के आधारभूत ढांचे को बनाए रखते हुए उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में बकाया मुकदमे जमा होने की समस्या को सुलझाने के लिए व्यापक उपायों की सिफारिश की है।

अध्याय 3

प्रमुख कमियों के लिए उपचारी उपाय

3.1 जब इन सिफारिशों को कार्यान्वित किया जाता है और न्यायालयों में बकाया मुकदमों की संख्या पर उसका प्रभाव अनुभव किया जाता है, उस समय तक के बीच की अवधि के दौरान न्यायपालिका के लिए कौन से मार्ग खुले हुए हैं? मुकदमों की बढ़ती हुई बकाया की सारणी को देखने मात्र से ही वह भयावह प्रतीत होती है :

कृपया सारणियां देखिए

उच्च न्यायालयों में तारीख 31-12-1985 को यथाविद्यमान लंबित सिविल मुकदमों का उनके लंबित रहने की अवधि के अनुसार वर्गीकरण

मुकदमों का प्रकार	एक वर्ष से कम	एक से दो वर्ष	दो से तीन वर्ष	तीन से चार वर्ष	चार से पांच वर्ष	पांच से छह वर्ष	छह से सात वर्ष
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
आरंभिक अधिकारिता							
1. सिविल वाद	6220	5158	4016	3433	2988	2398	2242
2. वसीयती तथा निर्वसीयती वाद	169	105	87	53	31	26	21
3. दिवाला विषयक मामले	231	106	61	48	14	15	1
4. समापन संबंधी मामले	772	245	238	117	64	71	57
5. चार्टर्ड एकाउंटेंट अधिनियम	-	-	3	-	-	2	3
6. रिट याचिका							
(क) सेवा संबंधी मामले	23235	17141	14262	10424	6473	4107	2218
(ख) भूमि की अधिकतम सीमा सहित भूमि सुधार	8538	6980	6772	11797	4851	1690	1212

1	2	3	4	5	6	7	8
(ग) श्रम विधियां	4405	3829	3363	2037	1603	776	330
(घ) अन्य	63642	44631	38801	32397	22667	15415	9035
6 (क) बैंककारी कंपनी अधिनियम	1	-	-	-	-	-	-
7. कंपनी याचिकाएं और आवेदन	3559	1431	2371	881	788	1262	363
8. आय-कर संबंधी निर्देश और आवेदन।	5424	5068	3425	3884	3237	2658	2363
9. विक्रय कर संबंधी निर्देश और आवेदन	1011	825	721	735	822	628	385
10. अन्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर संबंधी निर्देश और आवेदन	1170	1045	949	709	323	392	352
11. माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन याचिकाएं	1930	1041	668	440	564	278	373
12. भूमि अर्जन संबंधी निर्देश	8	34	55	44	43	38	36
13. विवाह विषयक मामले	167	68	29	14	13	2	3
14. निर्वाचन अर्जी	296	61	33	3	1	18	-

1	2	3	4	5	6	7	8
15. अन्य याचिकाएं	39744	25651	13241	6671	3463	1805	899
16. योग	160012	112729	89101	73787	47952	31577	19993
अपीली अधिकारिता							
17. आरंभिक अधिकारिता वाली अपीलें	1288	1198	1011	1028	670	456	340
18. लेटर्स पेटेंट अपीलें	2537	1309	1019	753	502	470	174
19. प्रथम अपीलें	14982	13292	11144	11217	8605	7913	5692
20. द्वितीय अपीलें	15456	12247	11075	11038	10294	8640	6492
21. प्रकीर्ण प्रथम तथा द्वितीय अपीलें	10702	8685	7005	5674	3973	2436	1653
22. पुनरीक्षण याचिकाएं	39632	32220	26065	18139	13252	10924	10372
23. प्रकीर्ण याचिकाएं	73737	43016	27794	21467	9790	6096	2933
24. अन्य	20561	12080	6157	4326	2390	1173	603
25. योग	178695	124047	91370	[illegible]	49476	[illegible]	[illegible]
26. लम्बित मामलों का कुल योग [illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

मुकदमों का प्रकार (1)	सात से आठ वर्ष (9)	आठ से नौ वर्ष (10)	नौ से दस वर्ष (11)	दस से अधिक वर्ष (12)	योग (13)
आरंभिक अधिकारिता					
1.	1524	1210	1034	4148	34371
2.	9	5	3	3	512
3.	3	6	2	15	502
4.	75	1015	26	66	1746
5.	-	4	1	1	14
6. रिट याचिका					
क)	850	425	249	177	79561
ख)	450	372	83	84	41 / 32
ग)	180	179	82	78	15862
घ)	4605	2909	2706	4555	241363
6 (क)	-	-	-	3	4
7.	174	81	62	115	11093
8.	1495	1013	743	437	29847
9.	115	54	72	31	5399
10.	237	205	155	142	5681
11.	321	295	292	317	[illegible]

12.	50	40	19	37	404
13.	1	2	-	-	304
14.	-	-	-	-	412
15. अन्य याचिकाएँ	532	464	414	441	90471
16. योग	10621	7279	5945	10655	569651

(1)	(9)	(10)	(11)	(12)	(13)
अपीली अधिकारिता					
17.	295	146	115	244	6791
18.	122	81	51	166	7184
19.	4543	3386	1964	5680	88418
20.	5027	4188	3039	5461	92957
21.	1368	696	457	1433	44082
22.	2177	3036	2375	5173	163165
23.	2131	1324	500	1113	189901
24.	394	161	103	258	48206
25. योग	16057	13018	8604	19528	640704
26. सिविल मामलों का कुल योग (16 + 25)	26678	20297	14549	30183	1210355

भारत का उच्चतम न्यायालय

सितम्बर, 1987 का मासिक विवरण

विवरण	गतमास में लंबित	संस्थित न्यायादेश जो मास के दौरान मंजूर किए गए	मास के दौरान निपटाए गए	मास के अंत में लम्बित
(क) नियमित सुनवाई वाले मामले	37809	605	248	38166
(ख) ग्रहण किए गए तथा प्रकीर्ण मामले	125549	6180	3021	129708
(क) तथा (ख) का योग	164358	6785	3269	167874

"आर"- तैयार के लिए
"एन आर"-उनके लिए जो तैयार नहीं

39

"जी" मंजूर किए गए
"डी" खारिज किए गए

भारत का उच्चतम न्यायालय

सितम्बर, 1987 का मासिक विवरण

विवरण	पिछले मास से लंबित		संस्थित न्यायादेश जो मास के दौरान मंजूर किए गए	मास के दौरान निपटाए गए	मास के अंत में लंबित		सी०ए०वी०	वर्ष के अंत में लंबित 1982	1983	1984
1.	"आर" (2)	"एनआर"	3	4	"आर" 5	"एनआर"	6	7	8	9
"क" नियमित सुनवाई वाले मामले:										
1. मामूली सिविल अपीलें	5859	20441	481	141	5818	20822	246	12647	1565	18965
2. संविधान संबंधी सिविल अपीलें	340+447*	303	-	-	340+447*	303	239	427	46	549
3. दांडिक अपीलें	2391	1736	75	11	2413	1778	-	2021	251	2910
4. अनुच्छेद 32 के अधीन सिविल याचिकाएं	3606	2971	49	91	3640	2895	36	2050	413	5076
5. अनुच्छेद 32 के अधीन दांडिक याचिकाएं	95	67	-	5	90	67	4	76	10	106
"क" योग	12291	25518	605	248	12301	25865	525	17221	2286	27606

"ख" ग्रहण हेतु तथा प्रकीर्ण
मामले

				"जी"	"डी"							
6• एस0एल0पी0 (सिविल) (विशेष इजाजत हेतु सिविल याचिकाएँ)	33668	1070	1499	146	666	812	34132**	1093	-	-	-	-
7• एस0एल0पी0 (दाँडिक) विशेष इजाजत हेतु दाँडिक याचिकाएँ	5349	550	303	53	142	195	5486	521	-	-	-	-
8• अनुच्छेद 32 के अधीन सिविल याचिकाएँ	4690	3047	151	49	139	188	4668	3032	-	-	-	-
9• अनुच्छेद 32 के अधीन दाँडिक याचिकाएँ	664	20	99	-	179	179	584	20	-	-	-	-
10• सिविल प्रकीर्ण यचिकाएँ	73165	-	3150	-	-	1357	74958	-	-	-	-	-
11• दाँडिक प्रकीर्ण याचिकाएँ	4526	-	978	-	-	290	5214	-	-	-	-	-
"ख" योग	121862	4887	6180	-	-	3021	125042	4666	-	-	-	-
"क" और "ख"	134153	30205	6785	-	-	3269	137343	30531	525	17221	22868	2706

(*) 447 ऐसी अपीलें हैं जो मामूली अपीलों से अंतरण द्वारा प्राप्त हुई हैं और ~~जिनकी अधिकारिता~~ संविधान न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित की जानी है।

** इनके अंतर्गत ऐसे मामले आते हैं जो कुछ अपीलों या रिट याचिकाओं के साथ या उनका निपटारा किए जाने के बाद सूचीबद्ध किए जाने के लिए निदेशित हैं और इनमें ऐसे मामले भी हैं जिनमें हेतुक दर्शित करने की सूचना की तामील अभी पूरी नहीं हुई है।

1 अक्तूबर, 1987 को यथाविद्यमान विवरण

गैर-सांविधानिक मामले (समेकित वर्गीकृत विवरण)

वर्ष	कर			श्रम			निर्वाचन			अन्य			योग	दांडिक अपीलें		
	1	2	3	1	2	3	1	2	3	1	2	3		1	2	3
1969	-	-	-	-	-	-	-	-	-	1	-	1	1	-	-	-
1970	-	-	-	-	-	-	-	-	-	4	14	18	18	-	-	-
1971	-	-	-	-	-	-	-	-	-	15	18	33	33	-	-	-
1972	-	-	-	-	-	-	-	-	-	117	20	137	137	-	-	-
1973	5	2	7	3	1	4	-	-	-	143	79	222	233	-	-	-
1974	25	9	34	-	1	1	-	-	-	358	86	444	479	-	-	-
1975	215	59	274	2	4	6	-	-	-	260	143	403	683	1	8	9
1976	209	74	283	5	1	6	-	-	-	202	163	365	654	3	11	14
1977	109	379	488	24	8	32	-	-	-	531	343	874	1394	8	11	19
1978	61	224	285	7	33	40	-	-	-	225	346	571	896	96	12	103
1979	110	379	489	25	48	73	-	-	-	367	748	1115	1677	411	21	432
1980	131	425	556	27	23	50	-	-	-	453	845	1298	1904	474	36	510

-42-

	कर			श्रम			निर्वाचन			अन्य			योग	दांडिक अपीलें		
	1	2	3	1	2	3	1	2	3	1	2	3		1	2	3
1981	61	209	270	21	20	41	-	-	-	500	1358	1858	2169	439	124	563
1982	21	420	441	41	23	64	-	-	-	413	1451	1864	2369	271	95	366
1983	120	958	1078	4	80	84	-	1	1	400	1448	1848	3011	331	158	489
1984	87	1249	1336	4	77	81	6	12	18	172	1700	1872	3307	220	180	400
1985	22	386	408	12	52	64	4	3	7	91	1794	1885	2364	84	485	569
1986	13	271	284	18	45	63	29	27	56	120	2536	2656	3059	68	315	383
1987	-	128	128	5	76	81	2	24	26	18	1994	2017	2252	7	322	329
योग	1189	5172	6361	198	492	690	41	67	108	4390	15091	19481	26640	2413	1778	4159
बी०एस०बी०			188		-	1	-	-	-	-	-	57	246	-	-	-

1 अक्तूबर, 1987 को यथाविद्यमान संविधान संबंधी मामले

(समेकित वर्गीकृत विवरण)

वर्ष	कर 1	कर 2	कर 3	सेवा 1	सेवा 2	सेवा 3	अन्य 1	अन्य 2	अन्य 3	योग	रिट याचिकाएं (सिविल) 1	रिट याचिकाएं (सिविल) 2	रिट याचिकाएं (सिविल) 3	रिट याचिकाएं (दाण्डिक) 1	रिट याचिकाएं (दाण्डिक) 2	रिट याचिकाएं (दाण्डिक) 3
1968	-	-	-	-	-	-	2	-	2	2	-	-	-	-	-	-
1969	-	-	-	-	-	-	1	-	1	1+1	-	-	-	-	-	-
1970	2	-	2	-	-	-	-	-	-	2+1	[illegible]	[illegible]	[illegible]	-	-	-
1971	-	-	-	1	-	1	-	-	-	1+3	1	0	1	-	-	-
1972	1	-	[illegible]	-	[illegible]	-	[illegible]	[illegible]	1	2+8	20	-	20	-	-	-
1973	10	-	10	-	-	-	8	-	8	18+3	16	-	16	-	-	-
1974	16	-	16	2	-	2	7	-	7	25+1	16	-	16	-	-	-
1975	2	-	2	3	-	3	11	5	16	21+6	9	-	9	-	-	-
1976	2	-	2	-	-	-	[illegible]	3	11	13+1	2	-	2	-	-	-
1977	-	1	1	3	-	3	23	5	28	32+140	37	1	38	-	-	-
1978	-	1	1	3	-	3	73	9	82	86	58	50	108	-	-	-
1979	-	24	24	-	5	5	12	6	18	47+155	92	15	107	-	-	-
1980	19	2	21	-	-	-	40	30	70	91+71	179	151	330	2	1	3

वर्ष	कर			सेवा			अन्य			योग	रिट याचिकाएं (सिविल)			रिट याचिकाएं (दाण्डिक)		
	1	2	3	1	2	3	1	2	3		1	2	3	1	2	3
1981	2	1	3	1	3	4	8	16	24	31+11	222	188	410	11	16	27
1982	6	17	23	1	-	1	7	24	31	55+10	708	285	993	16	30	46
1983	-	5	5	-	-	-	6	24	30	35+1	1063	1025	2088	24	-	24
1984	-	1	1	-	-	-	50	36	86	87+33	715	223	938	6	0	6
1985	-	-	-	-	-	-	2	11	13	13+1	389	690	1079	6	0	6
1986	-	-	-	-	-	-	8	4	12	12+1	88	109	197	25	20	43
1987	-	-	-	-	-	-	-	69	69	69	25	158	183	-	-	-
योग	60	52	12	14	8	22	266	243	509	643+447	3640	2895	6535	90	67	157
सी०ए०वी०-		-	-	-	-	-	-	-	-	239	-	-	36	-	-	4

(+ 447 ऐसी अपीलें हैं जो मामूली अपीलों से अन्तरण द्वारा प्राप्त हुई हैं और ~~जिनकी अधिकारिता संविधान~~ जो संविधान न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित की जानी है और जो संविधान संबंधी अपीलों के रूप में दर्ज नहीं हुई हैं किन्तु जो समय-समय पर ऐसे निदेशों के अनुसार अन्तरण पर प्राप्त हुई हैं) ।

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि इस समस्या का कोई समाधान नहीं है । किन्तु समस्या के आगे झुक जाना मानव विचक्षणता का अपमान होगा । समस्या का समाधान निकाला ही जाना चाहिए ।

3.2 इस बात का स्मरण करते हुए कि मौजूदा रिक्त स्थानों तथा पदों की संख्या में वृद्धि किए जाने से सर्जित पदों को भरे जाने में विलम्ब ही बकाया मुकदमों के जमा होने के लिए अधिकांशत: उत्तरदायी है, राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग का गठन होने तक एक विनिर्दिष्ट सुझाव दिया जा सकता है ।

3.3 उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदोन्नति होने पर या उनके सेवानिवृत्त होने पर अथवा पद पर रहते हुए न्यायाधीश की मृत्यु हो जाने पर उच्च न्यायालय में रिक्तियां होती हैं । मृत्यु ऐसी अनिश्चित घटना है जिसका कि पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता और ऐसी घटना के घटित हो जाने पर ही उस स्थिति के साथ युक्तिसंगत रूप से निपटा जाता है। बहरहाल, प्रत्येक न्यायाधीश के सेवानिवृत्त होने की तारीख तो संभवत: उसी दिन ज्ञात हो जाती है जब वह अपने पद की शपथ लेता है, कुछ ऐसे विरले मामलों को छोड़कर जिनमें उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बन जाने पर वह अपनी जन्मतिथि गलत दर्ज किए जाने की बाबत प्रश्न उठाता है । किन्तु ऐसे दुर्लभ मामले कम ही होते हैं । अत: उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के सेवानिवृत्त होने के कारण होने वाले रिक्त स्थान की जानकारी तो बरसों पहले से ही होती है । इस बात की सिफारिश बार-बार की गई है कि आगे होने वाले रिक्त स्थानों को भरने के लिए काफी पहले से ही प्रभावी कदम उठाए जाने चाहिए ।

रिक्त स्थान भरे जाने हेतु नाम की सिफारिश किए जाने की कार्यवाही, ऐसा स्थान रिक्त होने के कम से कम तीन से छह मास पहले से ही आरंभ करदी जानी चाहिए और बीच का समय प्रस्थापना के अनुसार किए जाने में लगाया जाना चाहिए । भले ही अनुसूची का अनुसरण किया ~~किया~~ जाता हो, अनुभव से तो यह पता चलता है कि बिरले ही किसी पदोत्तरवर्ती को उसी दिन नियुक्त ~~कर~~ दिया जाता है जिस दिन कोई स्थान रिक्त होता है । औसत रूप में रिक्तियों को भरने में एक से तीन वर्ष का समय लगता है । इस अवधि के दौरान न्यायाधीशों की ~~समय-लगता-है-~~संख्या कम हो जाती है, इससे निपटाए गए मामलों का औसत कम हो जाता है और मुकदमों की बकाया बढ़ जाती है । इसका अद्यतन उदाहरण यह है: शिमला स्थित हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की मंजूरीकृत संख्या सात है और इस समय मुख्य न्यायमूर्ति सहित कुल तीन न्यायाधीश ही पदासीन हैं । अब ऐसी स्थिति में रिक्त स्थानों को न भरा जा कर उनकी संख्या बढ़ा दिए जाने से क्या लाभ होगा ? यह केवल कागजी कार्यवाही बन कर रह जाएगी और बकाया मुकदमों का निरंतर ढेर लगता जाएगा । अतः रिक्तियों को भरने में लगने वाले समय के प्रश्न के संबंध में अब एक मौलिक सुझाव पर विचार करना आवश्यक हो गया है ।

3.4 यह मानते हुए कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति रिक्ति होने के छह मास पहले से ही आवश्यक सिफारिश करके पद को भरने की कार्यवाही शुरू कर दें, किन्तु फिर भी, यदि ऐसी रिक्ति उस तारीख तक न भरी जा सके जिस तारीख को ऐसी रिक्ति होती है,

अर्थात् यदि पदावरोही न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति की तारीख को पदोत्तरवर्ती न्यायाधीश शपथ ग्रहण करने के लिए उपलब्ध नहीं है तो उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या को मंजूरीकृत स्तर तक बनाए रखने के लिए सेवानिवृत्त होने वाला न्यायाधीश उस समय तक उस पद पर बना रहेगा, जब उत्तरवर्ती न्यायाधीश की नियुक्ति की जाती है और वह शपथ ग्रहण करने के लिए उपलब्ध होता है ।

3.5 क्या सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति आयु को बढ़ाए बिना ऐसा किया जा सकता है ? इसका उत्तर यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति आयु को पुनरीक्षित किए बिना ही, संविधान की सीमाओं के भीतर रहते हुए भी ऐसा करना संभव है । संविधान के अनुच्छेद 224क में यह उपबंध किया गया है कि " इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति किसी भी समय, राष्ट्रपति की पूर्वसहमति से, किसी व्यक्ति से, जो उस उच्च न्यायालय या किसी अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उपस्थित होने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा और प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जिससे इस प्रकार अनुरोध किया जाता है, इस प्रकार उपस्थित होने और कार्य करने के दौरान, ऐसे भत्तों का हकदार होगा, जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा अवधारित करें और उसको उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सभी अधिकारिता, शक्तियां और विशेषाधिकार होंगे, किन्तु उसे अन्यथा उस उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नहीं समझा जाएगा।" निस्संदेह, ऐसा केवल राष्ट्रपति की सम्मति से ही किया जा सकता

है किन्तु आम तौर पर ऐसी सम्मति मिल जाएगी । संबंधित न्यायाधीश औपचारिक रूप से उस समय सेवानिवृत्त हो जाता है जब वह 62 वर्ष की आयु पूरी कर लेता है तथा वह नई नियुक्ति की सभी औपचारिकताएं पूरी किए बिना ही, अपने पदोत्तरवर्ती न्यायाधीश के नियुक्त किए जाने तक पद पर बना रह सकता है । ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति की सम्मति महज औपचारिक प्रकृति की होगी, क्योंकि वह न्यायाधीश एक पीठासीन न्यायाधीश होता है और उसका नए सिरे से चयन नहीं किया जाता है । सिफारिश की गई प्रक्रिया को कार्यरूप देने के लिए मुख्य न्यायमूर्ति, न्यायाधीश के सेवानिवृत्त होने की तारीख के छह मास पूर्व ~~स्थान-स्तनन~~ संबंधित प्राधिकारी को आवेदन करेगा कि वह राष्ट्रपति की सम्मति अभिप्राप्त करले तथा इतना समय प्रस्थापना पर आगे कार्यवाही करले और राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होगा। आम तौर पर, राष्ट्रपति ऐसी सम्मति प्रदान ~~करेमन~~ कर देगा । इस सूत्रसे न्यायाधीशों की कुल संख्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी ।

3.6 विधि आयोग ने सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीश के तदर्थ न्यायाधीश के रूप में पद पर बने रहने की बाबत एक अंतिम प्रस्ताव तैयार किया है और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से अनुरोध किया है कि वे अपने सहयोगियों [2] के साथ विचार विमर्श करने के पश्चात् इस प्रस्थापना के संबंध में अपनी समालोचनात्मक प्रतिक्रिया भेजें । इसका अत्यधिक उत्साहवर्धक प्रत्युत्तर प्राप्त हुआ। इस प्रस्थापना के समर्थन में विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों में लगभग पूर्ण मतैक्य पाया गया ।

3.7 यह कहा जा सकता है कि यह अत्यंत तीक्ष्ण और उपचार है। बकाया मुकदमे जमा होने की इस नासूरवत् समस्या के साथ, जो गत बरसों में दुर्दान्त साबित हुई है और जो विभिन्न ऊपरी सुझावों से ठीक नहीं हो पाई है, तीक्ष्ण उपचारपूर्वक निपटा जाना चाहिए। किन्तु किसी भी बात से यह उपदर्शित नहीं होता कि ये तीक्ष्ण उपचार हैं और न ही उनका स्वरूप ही शल्यात्मक है। यह उपचार तो अधिक से अधिक एक अस्थायी व्यवस्था है जो इस समस्या से शीघ्रता से निबटने के लिए उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियों से सभी को छुटकारा देगा। बहरहाल, सेवानिवृत्ति की तारीख तक तो न्यायाधीश निश्चित ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करता रहता है और दो मास तक उसके उस पद पर बने रहने से न तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद की प्रतिष्ठा कम होगी और न उच्च न्यायालय का आदर्श ही धूमिल होगा।

3.8 इस उपचार के बारे में एक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। यदि उनकी {मुख्य न्यायमूर्ति की} राय में, न्यायाधीश शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं है तो उसे उस पद पर नहीं बने रहने दिया जाना चाहिए। न्यायाधीश को अपने पद पर बने रहने के लिए अनुज्ञात किए जाने के पूर्व इस बाबत उसके स्वास्थ्य के बारे में फिर से चिकित्सीय प्रमाणपत्र प्राप्त किया जाना चाहिए अथवा संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की गोपनीय राय अभिप्राप्त की जानी चाहिए। यदि न्यायाधीश का स्वास्थ्य खराब है तो वह स्वयं ही नहीं बने रहना चाहेगा क्योंकि उच्च न्यायालय का काम बड़ा ही बोझिल और भाररूप होता है। इसके अतिरिक्त, उसे बिना उसकी सम्मति के पद पर बनाए नहीं रखा जा सकता।

यदि एक बार मुख्य न्यायमूर्ति को इसमें हस्तक्षेप करने दिया जाए, भले ही वह इस थोड़े से समय के लिए पद पर बने रहने की बाबत हो, तो सभी प्रकार की पसन्दगी और नापसन्दगी के प्रश्न उठ जाएंगे और वह उपचार अपने आप ही प्रत्युत्पादक बन जाएगा । प्रत्येक नए सुझाव की बाबत एक आशंका होगी किन्तु न्याय देने की व्यवस्था को प्रभावी और परिणामाभिमुख बनाने के व्यापक हित में, इस आशंका का निग्रह किया जाना चाहिए ।

3.9 अब दूसरे सुझाव की भी परीक्षा कर ली जाए जो भी नियुक्ति के मामले में अरक्षणीय असफलता से ही उद्भूत होता है । यह धारणा करते हुए कि प्रथम सुझाव को अक्षरश: कार्यान्वित कर दिया गया है, उसका प्रभाव भविष्य में ही प्रतीत हो पाएगा, क्योंकि प्रत्येक राज्य का उच्च न्यायालय सामान्यत: अपनी पूरी मंजूरीकृत संख्या के साथ ही कार्य कर रहा होगा । यह धारणा करते हुए कि इस बीच सभी रिक्तियां भर ली जाती हैं, फिर भी स्थित इतनी निराशाजनक है कि यह तर्कसंगत आशंका हो सकती है कि इस पर भी सुधरी हुई स्थिति, वर्तमान में संस्थित किए गए मुकदमों और उनके आनुपातिक निपटारे के लिए तो पर्याप्त हो सकती है किन्तु कि बकायों के कम किए जाने की आभास नहीं मिलता । इसमें एक दिन का विलम्ब भी इस बात को प्रमाणित करता है कि न्याय में विलम्ब का अर्थ है न्याय से पूर्णतया वंचित किया जाना । अत: न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि किए बिना ही बकाया मुकदमों के प्रश्न को हल करने के लिए कोई अनुकल्प ढूंढा जाना होगा ।

3.10 उच्च न्यायालय की गरिमा को ठेस पहुंचाए बिना, विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि यदि

उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी जाती है तो भी आने वाले नए न्यायाधीश को उच्च न्यायालय के नित्य प्रतिदिन के कामकाज और उनकी जटिलताओं को समझने में और अपने समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले मामलों का शीघ्रता से निपटाकर कार्यभार कम करने में कुछ समय लगना अनिवार्य है । अतः हमें राज्य के खाली स्रोतों पर और अधिक भार डाले बिना ही परखे हुए प्रतिभा समुच्चय का उपयोग करने की बात सोचनी होगी ।

3.11 उच्च न्यायालय की मुख्य पीठ साधारणतया राजधानी वाले नगर में ही स्थित होती है, केवल कुछ मामलों को छोड़कर, जैसे कि राजस्थान, जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्यालय जोधपुर में है, जब कि राजधानी जयपुर में है । ऐसा ही एक और विशेष उदाहरण है जिसमें कि राजधानी अर्थात् मध्यप्रदेश में भोपाल में राज्य के उच्च न्यायालय की न्यायपीठ नहीं है । किन्तु इन दोनों आपवादिक मामलों को छोड़कर साधारणतया उच्च न्यायालय का मुख्यालय राजधानी में ही स्थित होता है । उच्चतम न्यायालय भारत की राजधानी दिल्ली में स्थित है । संविधान में यह उपबंध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय दिल्ली में अथवा ऐसे अन्य स्थान या स्थानों पर अधिविष्ठ होगा जिन्हें भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, समय-समय पर नियत करे[3] । वर्तमान में, उच्चतम न्यायालय दिल्ली में अधिविष्ठ होता है, और यद्यपि टोह लगाई जाती है तो भी देश के किसी अन्य भाग में उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठ स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है ।

3.12 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की भर्ती, किसी बिरले अपवाद को छोड़कर, प्रत्येक राज्य उच्च-

न्यायालय में विधि व्यवसाय करने वाले अधिवक्ताओं में से या उच्च न्यायालय की अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों में से की जाती है। उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् अधिवक्ताओं में से भर्ती किए गए न्यायाधीश आम तौर पर उसी नगर में बस जाते हैं जहां उच्च न्यायालय का मुख्यालय स्थित होता है। यहां तक कि अधीनस्थ न्यायपालिका से पदोन्नत किए गए न्यायाधीशों की प्रवृत्ति भी सेवानिवृत्त होने के पश्चात् उसी नगर में बस जाने की होती है जहां उच्च न्यायालय का मुख्यालय स्थित होता है। ऐसे सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जो उस नगर में बस जाते हैं, जहां उच्च न्यायालय का मुख्यालय होता है, अपने निवास के लिए अपनी ही व्यवस्था कर लेते हैं और साधारणतया वे परिवहन तथा टेलीफोन की भी अपनी ही व्यवस्था कर लेते हैं। निस्संदेह, उच्च न्यायालय के बिरले ही न्यायाधीश उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात्, उच्चतम न्यायालय में विधि व्यवसाय करने के लिए दिल्ली जाते हैं। ~~किन्तु~~ तथापि उच्च न्यायालय से वर्ष प्रतिवर्ष सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीशों के ऐसे वर्ग का प्रतिशत बहुत ही थोड़ा है।

3.13 ऐसे सेवानिवृत्त, न्यायाधीश अनुभवी व्यक्ति होते हैं क्योंकि वे अपने जीवनकाल का अधिकांश भाग न्यायनिर्णयन संबंधी कार्य में व्यतीत कर चुके होते हैं। वे अपने समक्ष आने वाले मुकदमों और ~~संविदनेके नल~~ संविदाओं को तय कर चुके होते हैं। उन्हें निर्णय करने की प्रक्रिया का यथेष्ठ अनुभव होता है। वे न्यायनिर्णयन की कला से भी पूरी तरह परिचित होते हैं। उन्हें न्यायालय की प्रक्रिया का पूरा ज्ञान होता है। उन्हें अपने समक्ष प्रस्तुत होने वाले सिविल, दांडिक, कर, श्रम तथा संविधान संबंधी मामलों का विशेषज्ञीय ज्ञान प्राप्त हो जाता है। संक्षेप में, वे प्रतिभा संपन्न व्यक्ति के अंतर्गत समूह

आते हैं । अधिवर्षिता पर सेवानिवृत्त होने पर, उनमें से कुछ तो विधि व्यवसाय के क्षेत्र में, जैसे कि प्राइवेट माध्यस्थम या विधि परामर्श देने को कार्य में आ जाते हैं, जब कि उनमें से अधिकांश सेवानिवृत्त न्यायाधीश काम के बिना क्षीण शक्ति हो जाते हैं और उनका अपार अनुभव समाज के काम नहीं आ पाता । भारत जैसा देश अपनी इस प्रतिभा को नष्ट होने नहीं दे सकता । हम इन वरिष्ठ नागरिकों के प्रचुर अनुभव का किस प्रकार लाभ उठाएं ।

3.14 जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मुकदमों की बकाया के इस दानव को जड़ से मिटा देने के लिए उस पर चारों ओर से हमला किया जाना अनिवार्य है । संविधाननिर्माताओं ने पहले से ही भांप लिया था कि ऐसी स्थिति आ सकती है कि जब इन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की प्रतिभा से पुन: सहयोग प्राप्त करना होगा और इसीलिए उन्होंने इस निमित्त पर्याप्त उपबंध कर दिया। संविधान के अनुच्छेद224क में यह उपबंध किया गया है कि भाग 6 के अध्याय 5 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, किसी भी समय, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, किसी ऐसे व्यक्ति से, जो उस उच्च न्यायालय या किसी अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उपस्थित होने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा और प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिससे इस प्रकार अनुरोध किया जाता है, इस प्रकार उपस्थित होने और कार्य करने के दौरान ऐसे भत्तों का हकदार होगा, जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा अवधारित करे और उसको उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सभी अधिकारिता, शक्तियां और विशेषाधिकार होंगे, किन्तु उसे अन्यथा उस उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नहीं समझा जाएगा । इसका एक परन्तुक भी है जिसमें यह कहा गया है कि इस शक्ति का प्रयोग संबंधित व्यक्ति

की सहमति से ही किया जा सकता है । इस शक्ति का तो कभी बिरले ही आश्रय लिया गया हो ।

3.15 अब प्रत्येक उच्च न्यायालय में, पहले उपवर्णित की गई सारणी 4 के अनुसार पांच वर्ष से भी अधिक पुराने अनेक मामले पड़े हुए हैं । उनमें से कुछ ऐसे हो सकते हैं जो अब अव्यवहारिक हो गए हों, उनमें से कुछ निष्फल हो गए हों, कुछ का उपशमन भी हो गया हो और उनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें मुकदमों के निपटारे में मात्र विलम्ब के कारण पक्षकारों का मुकदमा लड़ने में हित ही न रह गया हो । निस्संदेह, अनेक ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें कि मामले का निर्णय कर दिया गया हो और निर्णय दे दिया गया हो ।

3.16 अधिकांश उच्च न्यायालयों का अपना भवन होता है, केवल गुजरात जैसे राज्य के सिवाय, जहाँ उच्च न्यायालय बच्चों के एक अस्पताल में स्थित है । किन्तु यह भी तो एक अपवाद ही है । उच्च न्यायालय में बैठक का समय भी अलग-अलग होता है, जैसे कि हिमाचल प्रदेश में 10 बजे पूर्वाह्न से 4 बजे अपराह्न तक से लेकर गुजरात और महाराष्ट्र में 11 बजे पूर्वाह्न से 4.45 बजे अपराह्न तक । अन्य उच्च न्यायालय अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अपनी अपनी समय व्यवस्था कर लेते हैं । उच्च न्यायालयों के भवन साधारणतया विशाल, सुसज्जित और आधुनिक पुस्तकालय वाले होते हैं । उच्च न्यायालय भवन के, उदाहरणार्थ, 10 बजे पूर्वाह्न और 4.45 बजे अपराह्न के बीच उपयोग से निश्चित रूप से इस बात का पता चलता है कि इस स्थान सुविधा और सहूलियत का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो पाता है । अब यदि हम इन दोनों बातों को मिला दें, अर्थात् इस बात को कि उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के रूप में इस प्रतिभा समुच्चय का उपयोग नहीं हो पा रहा है तथा इस बात को कि पुस्तकालय जैसे पूंजीगत साधनों का पूरा-पूरा

उपयोग नहीं हो पा रहा है मिला दें तो समाधान अपने आप निकल आता है । भारत जैसे विकासशील देश को अपने पूंजीगत व्यय और प्रतिभा, दोनों ही संसाधनों का पूरा-पूरा उपयोग अवश्य करना चाहिए । इसमें विकल्प तदनुसार अभिभावी होगा ।

3.17 उच्च न्यायालय साधारणतया पाँच घंटे कार्य करते हैं जिसमें खाने का समय 45 मिनट से लेकर एक घंटे तक का होता है । यह प्रतीत हुआ है कि खाने के समय की अवधि कुछ अधिक है । थके हुए स्नायुओं को पुनर्जीवित करने के लिए 30 मिनट का अवकाश पर्याप्त होगा । 11 बजे से 5 बजे तक का कार्य समय (परिवर्तनों सहित) इस अर्थ में असुविधाजनक है कि न तो घर पर सुबह अधिक काम किया जा सकता है और न शाम को ही कर्मचारी सुविधाओं के अभाव में अधिक काम ही किया जा सकता है । क्षण भर के लिए भी यह सुझाव नहीं दिया जा रहा है कि उद्योग की पारी पद्धति को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और वकीलों जैसी प्रतिष्ठित संस्था के, जो वृत्तिक विशेषज्ञीय ज्ञान से भी समृद्ध होती है, कामकाज में लागू किया जा रहा है । किन्तु पूंजीगत आस्तियों का पूरा-पूरा उपयोग न किए जाने तथा अनुभव प्राप्त प्रतिभा समुच्चय का विफल उपयोग होने जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय अपव्यय होता है । अतः, इन दोनों ही स्थितियों पर एक बार फिर विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

3.18 जैसा कि अभी कुछ पहले ही बताया जा चुका है, उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीश साधारणतया वहीं बस जाते हैं जहाँ उच्च न्यायालय का मुख्यालय स्थित होता है और यदि उनकी नियुक्ति उन स्थानों से, जहाँ न्यायपीठें स्थापित होती हैं, संबद्ध अधिवक्ताओं में से की जाती है तो सेवानिवृत्त होने पर

से सभी स्थानों पर आते हैं । अतः यह धारणा करना न्यायोचित होगा कि ऐसे प्रत्येक स्थान पर, जहाँ उच्च न्यायालय का मुख्यालय तथा न्यायपीठ का स्थान होता है, वहाँ न्यायनिर्णयन की कला में पारंगत और न्यायकरण की प्रक्रिया से सुपरिचित सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के रूप में प्रतिभा समुच्चय उपलब्ध होता है । अतः आवश्यकताओं पर निर्भर करते हुए, यह आवश्यक है कि इन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को अपनी सेवाएँ पुनः समाज के लिए अर्पित करने हेतु वापस बुलाया जाए, जिसने कि उन्हें जीवन में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की प्रास्थिति, प्रतिष्ठा और गौरव प्रदान किया था । उन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की उपलब्धता के आधार पर, जो वहीं बस गए हैं ~~जनक-से~~ जहाँ उच्च न्यायालय का मुख्यालय है या जहाँ उसकी न्यायपीठ कार्य कर रही है, मुख्य न्यायमूर्ति को चाहिए कि वे ~~प्रातःकाल जिनमें दो न्यायाधीश हों ऐसे-ऐसे~~ सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की सेवाएँ प्रातःकाल सिविल, दाण्डिक और प्रकीर्ण काम करने के लिए ऐसी न्यायपीठों का गठन करने हेतु (जिसके भी आवश्यकता है) प्राप्त करें । सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की न्यायपीठ लगभग 8·30 बजे पूर्वाह्न कार्य आरंभ कर सकती है और दोपहर 12 बजे या 12·30 बजे तक काम कर सकती है । उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, यथास्थिति, दोपहर 12 बजे या 12·30 बजे समवेत होंगे और 5·30 बजे अपराह्न तक काम करेंगे जिसमें आधा घंटा खाने के समय का भी सम्मिलित होगा । इसके दो लाभ होंगे, पहले तो भवनों, केन्द्रीकृत कार्यालयों और सुविधाओं की, जिनके अंतर्गत पुस्तकालय भी हैं, अप्रयुक्त क्षमता का उपयोग किया जा सकेगा और साथ ही सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के रूप में समृद्ध प्रतिभा समुच्चय का भी उपयोग किया जा सकेगा । इसका दूसरा लाभ यह होगा कि न्यायकरण प्रक्रियाओं का अत्यधिक अनुभव और विशेषज्ञीय ज्ञान होने के कारण ये सेवानिवृत्त न्यायाधीश काम करने

में तत्परता बरतेंगे । साथ ही , उन पर प्रशासनिक अथवा याचिका ग्रहण करने के काम का बोझ नहीं होगा जिस कारण वे पुराने ~~मलम~~ मामलों की सुनवाई करने के लिए अपना पूरा समय दे पाएंगे । निस्संदेह, उन न्यायाधीशों की संख्या के अनुपात में, वृद्धि ~~करनी होगी~~, जो तदर्थ न्यायाधीशों के रूप में काम करेंगे, कर्मचारिवृन्द की, जैसे कि कोर्ट मास्टरों, आशुलिपिकों, लिपिकों और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारिवृन्द की संख्या में वृद्धि करनी होगी ।

3.19 मुख्य न्यायमूर्ति को चाहिए कि वे पुराने मुकदमों की लम्बमानता के आधार पर, एक आधार वर्ष तय करें और तत्पश्चात् यह निदेश दें कि आधार वर्ष तक लंबित और आधार वर्ष के पूर्व ग्रहण किए जा चुके सभी मुकदमें, केवल सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को समनुदिष्ट किए जाएंगे । जहां न्यायपीठ दो न्यायाधीशों से मिल कर गठित हो वहां निर्णय लिखने का भार सम्यक रूप से डाला जाएगा । इन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के पास दोपहर बाद का पूरा समय होगा जिससे उन पर अत्यधिक भार भी नहीं पड़ेगा । इसी प्रकार, वर्तमान न्यायाधीशों के पास अपने निर्णय लिखने, अपना प्रशासनिक कार्य निबटाने और शाम को घर लौटने के बाद मुकदमों को पढ़ने के लिए भी सुबह का पूरा समय होगा । विधि आयोग को इस बात का पूरा विश्वास है कि यदि इस सिफारिश को कार्यान्वित किया जाता है तो इससे बकाया मुकदमे काफी हद तक निपटाए जा सकेंगे क्योंकि तीन या चार न्यायपीठें एक साथ पुराने मामले निबटाएंगी।

3.20 जब कभी यह सुझाव किया जाता है कि न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए तथा और अधिक न्यायाधीश नियुक्त किए जाने चाहिए, तब इसके साथ ही पूंजी व्यय का प्रश्न भी उठता है । एक प्रश्न यह भी उठाया जाएगा कि विद्यमान भवन सुविधा अपर्याप्त है तथा मुम्बई , कलकत्ता, मद्रास, हैदराबाद, अहमदाबाद

जैसे बड़े नगरों और ऐसे ही अन्य स्थानों पर न्यायाधीशों के लिए मकान की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है । परिवहन सुविधाएं देने के लिए उच्च न्यायालयों को नई कारें खरीदनी होंगी । नया फर्नीचर, साज सामान, टाइपराइटर और ऐसी ही अन्य चीजें खरीदनी होंगी और इस सुझाव से मिलने वाले फायदों की तुलना में पूंजी व्यय की लागत अधिक बढ़ जाएगी । यहाँ बताए गए दृष्टिकोण और पूर्ववर्ती पैरा में की गई सिफारिश में पूंजी व्यय बचाने का भी ध्यान रखा गया है/उसी भवन का उपयोग किया जाएगा जिसमें फिलहाल उच्च न्यायालय बैठता है । जो न्यायाधीश सेवानिवृत्त होते हैं वे अपनी स्वयं की परिवहन व्यवस्था कर चुके होते हैं । इसलिए उनके लिए नई कारों को खरीदने की आवश्यकता नहीं होगी । उनके अपने मकान, अपने टेलीफोन और ऐसी ही अन्य चीजें होती हैं जिनकी उन्हें न्यायाधीशों के रूप में काम करने के लिए आवश्यकता होती है । उन्हें पुस्तकालय की सुविधा होगी । इस प्रकार से पूंजी व्यय में बहुत थोड़ी सी ही वृद्धि होगी ।

3·21 किन्तु, यहाँ एक विवादास्पद प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी ऐसे व्यक्ति का, जो सेवानिवृत्त हो चुका है, पुनः नियोजन किए जाने के विषय में भारत सरकार और राज्य सरकारों, दोनों का वर्तमान दृष्टिकोण निरुत्साहक है । ऐसे सभी पुनर्नियोजित व्यक्तियों को उनका अंतिम वेतन जिसमें से पेंशन कम कर दी जाती है, दिया जाता है और उसमें से उस उपदान के, जिसे वे इतने लम्बे काल तक सेवा करने के पश्चात् पहले ही अर्जित कर चुके होते हैं जो कि उन्हें अपनी निवृत्ति विषयक फायदे पाने के लिए हकदार बनाती है, पेंशन समतुल्य तक, अन्यायपूर्ण रूप से, अनुचित रूप से और अवैध रूप से कटौती करली जाती है । अतः पुनर्नियोजन की शर्तों का पुनर्विलोकन किए जाने की परम आवश्यकता है ।

स्वयं अनुच्छेद 224क भी निरुत्साहक है । उसमें यह कहा गया है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जब उस से एक न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का अनुरोध किया जाए, ऐसे भत्तों का हकदार होगा जो राष्ट्रपति, आदेश द्वारा, अवधारित करे । यदि हम इसे कार्यरूप में परिणत करें तो इसका यह आशय होगा कि इस शक्ति का उपयोग इस प्रकार संदाय करने के लिए किया जाएगा मानो वह एक दैनिक मजदूरी वाला व्यक्ति है और इसका अर्थ यह हुआ कि एक औद्योगिक कर्मकार के विपरीत उसे सवेतन छुट्टी नहीं मिलेगी। विधि आयोग का विचार है कि प्रोत्साहनकारी न होने के अलावा यह दृष्टिकोण अपमानकारी भी है । तब हम इस बाबत क्या करें ?

3.22 इस विषय में सबसे पहला सुझाव तो यह है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को वही वेतन दिया जाए जो पदासीन न्यायाधीशों को प्राप्त होता है और उसमें से पेंशन या उपदान जिसका मिथ्या नाम पेंशन का समतुल्य है न काटा जाए । वेतन से अभिप्रेत है वेतन और भत्ता, सत्कार-भत्ता आदि सम्मिलित नहीं हैं । जिन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से विधि आयोग की बातचीत हुई है उसका दृष्टिकोण यह है कि सेवानिवृत्त व्यक्ति अपनी पेंशन अर्जित करता है । यदि उससे उसके ढलते जीवन में काम करने के लिए कहा जाए तो इसके लिए कुछ प्रोत्साहन तो अवश्य होना चाहिए । यह कमी उसे पेंशन या उपदान के पेंशन समतुल्य की कटौती किए बिना पूरा वेतन देकर देकर दूर की जा सकती है ।

3.23 ऐसा नहीं है कि सेवानिवृत्त न्यायाधीश को पेंशन या उपदान के समतुल्य पेंशन की कटौती किए बिना पूरा वेतन दिए जाने की सिफारिश करके विधि आयोग ने कोई बहुत ही क्रांतिकारी बात सुझाई है । गुजरात राज्य में ऐसे बहुत से पद हैं जो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से भरे गए हैं;

उदाहरणार्थ, औद्योगिक माध्यस्थम के न्यायालय, मध्यस्थ और स्थानीय सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रार के नामनिर्देशिती तथा ऐसे ही अन्य मिलते जुलते पद । प्रायः इन पदों पर सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की ही नियुक्ति की जाती है । सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति विभिन्न अधिकरणों में भी की जाती है; उदाहरणार्थ, विक्रय कर अधिकरण, राजस्व अधिकरण, राज्य सेवा अधिकरण और अन्य ऐसे ही मिलते जुलते पद । इन सभी को पेंशन की कटौती किए बिना उनका अंतिम वेतन दिया जाता है । अतः विधि आयोग की यह राय है कि ऐसे सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को, जिनसे लोक और राष्ट्रीय हित में काम करने के लिए अनुरोध किया जाता है, पेंशन अथवा उपदान के समतुल्य पेंशन की कटौती किए बिना उतना ही वेतन दिया जाना चाहिए जितना कि किसी पदासीन न्यायाधीश को दिया जाता है, जैसा कि यहाँ स्पष्ट कर दिया गया है ।

3.24 सुझाव के रूप में प्रस्तुत किए गए विधि आयोग के विचारों के संबंध में मुख्य न्यायमूर्तियों की प्रतिक्रिया जानने के लिए प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को एक पत्र (परिशिष्ट 2 और 3 देखिए) लिखा गया था जिसमें उनसे यह अपेक्षा की गई थी कि वे यहाँ की गई सिफारिशों और विधि आयोग के उक्त सुझावों के संबंध में अपने सहयोगियों से विचार विमर्श करके, अपनी आलोचनात्मक प्रतिक्रिया सूचित करें ।

3.25 उन मुख्य न्यायमूर्तियों में से एक ने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के होते हुए भी, विधि आयोग के इन सुझावों के पक्ष में अपनी सहमति व्यक्त की है । उनका यह मत है कि यह निश्चित करने का काम मुख्य न्यायमूर्ति पर छोड़ दिया

जाना चाहिए कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों में से किनसे कार्य करने का अनुरोध किया जाए और किस न्यायाधीश से उसका उत्तरवर्ती नियुक्त न किए जाने की दशा में उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद भी पद पर बने रहने के लिए कहा जाए । इसमें कोई संदेह नहीं कि अनुच्छेद 224क उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का अनुरोध करने की शक्ति प्रदान करता है । इसलिए, न्यायाधीश के रूप में काम करने के लिए बुलाए जाने के लिए, किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश का चयन करने के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति का हस्तक्षेप अनुच्छेद 224क में विवक्षित है । किन्तु, सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद नए पदधारी के पदग्रहण करने तक कार्य करते रहने के मामले में विधि आयोग की राय यह है कि मुख्य न्यायमूर्ति को उसके ऐसे न्यायाधीश बने रहने के लिए आम तौर पर सहमत हो जाना चाहिए । यदि एक बार यह उपबंध कर दिया जाए कि सेवानिवृत्त होने वाला न्यायाधीश अपना उत्तरवर्ती ~~नियुक्त होने वाला न्यायाधीश अपना उत्तरवर्ती~~ नियुक्त हो जाने तक कार्य करता रहेगा तो यह आशा की जाती है कि इस बात से ही रिक्त स्थानों को शीघ्रता से भरने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा और यदि साथ ही साथ, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीशों के लिए नए पीठ का गठन कर दिया जाता है, जैसी कि विधि आयोग ने सिफारिश की है, तो ~~विधिसम्मत~~ सामान्यतया रूप से आशा की जा सकती है कि ऐसी अस्थायी व्यवस्था अल्पतर अवधि के लिए होगी और इसलिए उत्तरवर्ती नियुक्त हो जाने तक सेवानिवृत्त न्यायाधीश के ही कार्य करते रहने के मार्ग में मुख्य न्यायमूर्ति बाधक नहीं होंगे । वे इस प्रस्थापना पर शीघ्रता से कार्यवाही कर सकते हैं जिससे कि ऐसे न्यायाधीश के रूप में उसका बना रहना लम्बी अवधि के लिए न हो ।

3.26 जिन मुख्य न्यायमूर्तियों ने तारीख 20 जनवरी, 1988 वाले पत्र (परिशिष्ट 3) के संबंध में प्रतिक्रिया व्यक्त की है, उनमें से कुछ ने कुल मिलाकर विधि आयोग के सुझावों का समर्थन ही किया है । अन्यों की बाबत निरापद रूप से यह माना जा सकता है कि यदि उनका यह विश्वास होता कि यह प्रस्थापना न तो साध्य है, न व्यवहार्य है और न न्यायपालिका के हित में ही है, तो उन्होंने निश्चित ही अपने विचार व्यक्त किए होते । किसी भी स्पष्ट उत्तर के अभाव में यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि कुल मिलाकर उनकी राय विधि आयोग की प्रस्थापना के अनुरूप है ।

अध्याय 4

अज्ञात क्षेत्र के लिए सुझाव

4.1 उच्च न्यायालयों में बकाया रहे मुकदमों की समस्या को सुलझाने के लिए आयोग और समितियों द्वारा विगत समय में अनेकानेक सुझाव दिए गए हैं । उन्हें परिशिष्ट 1 में सारणीबद्ध किया गया है । जब तक कि पहले ही दिए जा चुके सुझाव के विपरीत जाने वाले सुझाव में शामिल नहीं किया जाता या जहां इसमें प्रस्तुत किए गए सुझाव और इसी विषय पर विगत समय में दिए गए सुझाव साथ साथ नहीं चल सकते तब तक पूर्व में दिए गए सभी सुझावों से इस रिपोर्ट में विचलन नहीं किया गया है । उन सभी पर सन् 1979 तक मौजूद स्थिति को सुधारने की सम्भावना का पता लगाने की दृष्टि से विचार किया जा सकता है । किंतु जहां इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशें / सुझाव पहले की गई सिफारिश/सुझाव के विपरीत हैं वहां आयोग यह सुझाव देता है कि इस रिपोर्ट में की गई सिफारिश को कार्यान्वित किया जाना चाहिए क्योंकि पूर्व में की गई सिफारिशें समस्या को सुलझाने में कामयाब नहीं रही हैं । स्वयं विधि आयोग को भी, सन् 1979 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय उन परिणामों की बाबत संदेह था जो कि की गई सिफारिशों के कार्यान्वयन से बकाया मुकदमों की समस्या को सदा के लिए सुलझाने के बारे में निकलते । आयोग ने स्पष्टतः यह कहा है कि उसे इस बाबत कोई भ्रम नहीं है और वह इन सिफारिशों के कार्यान्वित किए जाने तक किंचित शंकाशील रहना अधिक पसंद करेगा । उसकी यह राय थी कि "इस समस्या के स्थायी समाधान की खोज निरर्थक होगी । मानव इतिहास में, अंततोगत्वा तो कोई समाधान होते नहीं हैं - केवल समस्याएं ही होती हैं । अतः समाधान की तलाश एक अनवरत

प्रक्रिया होनी चाहिए । यह एक पिपासा है - न कि खोज ।" प्रस्तुत रिपोर्ट बकाया मुकदमों के इस नितल रहित गर्त में एक और डुबकी है ।

4.2 यह स्वीकार करते हुए कि विगत समय में अनेकानेक सुझाव दिए जा चुके हैं और अब शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र बचा हो जहां किसी नई दिशा दृष्टि से काम लिया जा सकता है, फिर भी, उच्च न्यायालयों के कार्यकरण के अनुभव से ऐसे अनेक क्षेत्रों का पता चलता है जहां नई दिशा दृष्टि प्रभावी हो सकती है । इन्हीं क्षेत्रों को अज्ञात क्षेत्र कहा जा सकता है जिनकी बाबत अब खोज की जानी है ।

4.3 जिन मूलभूत धारणाओं पर उच्च न्यायालयों का आंतरिक प्रबन्ध तंत्र आधारित है, उनमें से एक धारणा यह है कि न्यायालय का प्रबन्ध न्यायाधीशों का अनन्य उत्तरदायित्व है और शक्ति का केन्द्र बिंदु मुख्य न्यायमूर्ति होता है ।[2] वही न्यायपीठों की नियुक्ति करता है, कर्मचारिवृन्द की नियुक्ति करता है, काम का समनुदेशन विनियमित करता है, उच्च न्यायालय के कर्मचारिवृन्द की ज्येष्ठता और प्रोन्नति के बारे में कार्रवाई करता है और उच्च न्यायालय की ओर से अन्य सरकारी अभिकरणों के साथ पत्र-व्यवहार करता है । संक्षेप में, वह उच्च न्यायालय की प्रबंधकीय शाखा की शक्ति का केन्द्र बिंदु होता है। निस्संदेह, प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति अधीनस्थ न्यायालयों के साथ व्यवहार करते समय प्रशासन में अपनी सहायता के लिए कुछ न्यायाधीशों से अनुरोध करता है । किंतु यह उसके विवेकाधिकार का विषय है । यदि इस समस्या से निपटने के लिए उसके पास समय है और पर्याप्त शक्ति है तो उसे उस दशा के सिवाय जहां संविधान में उच्च न्यायालय[3] के साथ परामर्श करने के लिए उपबंध किया गया है, प्रशासनिक न्यायाधीशों के रूप में कार्य करने के लिए अपने सहयोगियों की सहायता लेने की कोई कानूनी या संवैधानिक बाध्यता नहीं है ।

4.4 न्याय प्रशासन का एक अन्य महत्वपूर्ण अंग विधि-व्यवसाय व्यवस्था है । जैसे प्रतिवादी वाली पद्धति में, विधि-व्यवसाय न्याय के प्रशासन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा न्यायप्रशासन के प्रभावी होने के लिए इसे इस प्रकार सुव्यवस्थित रूप दिया जाना चाहिए जिससे यह इन दोनों ही अंगों पर, अर्थात् न्यायाधीशों और विधि व्यवसायियों पर एक उत्तरदायित्व डाल सके । संक्षेप में, उच्च न्यायालय का प्रबन्ध एक संयुक्त उत्तरदायित्व माना जाना चाहिए । न्यायालय प्रणाली का प्रशासन उत्तरोत्तर प्रशासकों के बीच भागीदारी के रूप में माना जाता है जो कि भारतीय स्थिति में, न्यायाधीश और विधि व्यवसायी हैं ।

4.5 इस सुझाव का औचित्य बताते समय, हाल ही की कुछ घटनाओं पर विचार किया जा सकता है । विधि व्यवसायियों द्वारा हड़ताल एक आम बात हो गई है, जिससे न्यायालय का कामकाज ठप्प हो जाता है, और इससे मुकदमा लड़ने वाले व्यक्तियों को असहनीय कठिनाई झेलनी पड़ती है । ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो पक्ष प्रतिपक्ष वाली पद्धति में न्याय के प्रशासन से संबद्ध दोनों अंग किसी संयुक्त उत्तरदायित्व या उभयनिष्ठ विषय के भागीदार नहीं रह गए हैं, बल्कि उनमें कोई मुकाबला पैदा हो गया है । इतने बड़े (इस) उपमहाद्वीप भारत में कहीं भी कोई बात हो जाती है और वकील हड़ताल का सहारा लेकर न्यायालयों के कामकाज को ठप्प कर देते हैं और वह समस्या, जिसके लिए हड़ताल का सहारा लिया जाता है, न्यायालय संस्था द्वारा, जिसके अंतर्गत अनिवार्यतः न्यायाधीश भी होते हैं, सुलझाई नहीं जाती है । न्यायालय प्रणाली के प्रशासन में उद्भूत होने वाली समस्याओं को सुलझाने के लिए संयुक्त बातचीत के लिए कोई वार्तापीठ नहीं है जहां बैठकर आपसी बातचीत उन समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकती है जिससे न्यायालय का कामकाज सुचारु रूप से चल सके ।

न्यायालय संस्था न तो न्यायाधीशों के लिए है और न विधि व्यवसायियों के लिए ही है, बल्कि यह मुकदमा लड़ने वाले उन पक्षकारों के लिए भी होती है जो न्यायप्रणाली के माध्यम से अपने विवादों को सुलझाना चाहते हैं। न्यायाधीश और विधि-व्यवसायी समाज के व्यवस्थित विकास के लिए विवादों को सुलझाने में सहायता करने के लिए होते हैं। यदि न्याय प्रणाली-प्रशासन के ये दोनों ही महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग एक दूसरे के मुकाबले में आ जाएं तो इस प्रणाली में गतिरोध आ जाएगा। यह तो मानी हुई बात है कि जहां कहीं सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम करने वाले इन भागीदारों द्वारा कोई संविवाद उठाए जाने की संभावना हो वहां उनकी आपसी बातचीत के लिए वार्त्तापीठ की व्यवस्था करने के लिए एक विचारक निकाय का गठन किया जाना चाहिए जो एक दूसरे के दृष्टिकोण की विवेचना करेगा और उनके बीच विरोध और मुकाबले को दूर करने के लिए सर्वसम्मत हल ढूंढने का प्रयत्न करेगा। इसकी आज भारत में अत्यधिक आवश्यकता है जहां कि विधि व्यवसायी बिना किसी पूर्व सूचना के ही हड़ताल का सहारा लेकर न्यायालय के काम-काज से विरत हो जाते हैं, उनसे असहमत सदस्यों को न्यायालयों में प्रवेश करने से रोकने के लिए धरना देते हैं, इस बात का निश्चय करने के लिए कि क्या न्यायालयों का बहिष्कार जारी रखा जाए या नहीं, गुप्त मतदान में बाधा पहुंचाते हैं तथा जहां कि वाचिक अल्पसंख्यक द्वारा अल्पभाषी और सहिष्णु बहुसंख्यक पर अपना निर्णय थोपा जाना एक आम बात हो गई है। 7

4.6 हाल ही में, न्यूजीलैंड में, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक सर्वसम्मत सिफारिश का अनुसरण करते हुए न्यायालय परामर्श समिति की स्थापना की गई है जिसका अध्यक्ष मुख्य न्यायमूर्ति है और जिसमें न्यायाधीश, विधि सोसाइटी के नामनिर्देशिती, न्याय विभाग के अधिकारी,

महा सालिसिटर और कुछ सामान्यजन[4] समाविष्ट हैं ।

4.7 तदनुसार, प्रत्येक उच्च न्यायालय एक न्यायालय परामर्श समिति गठित करेगा, जिसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति होगा और जिसमें तब जब कि उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या दस से अधिक हो, तीन ज्येष्ठतम न्यायाधीश समाविष्ट होंगे, और अन्य दशाओं में उसमें मुख्य न्यायमूर्ति और उसके ठीक बाद का ज्येष्ठतम न्यायाधीश, महाधिवक्ता, राज्य सरकार का न्यायमंत्री (चाहे जो भी) का अध्यक्ष और सचिव, राज्य विधिज्ञ परिषद् के सदस्यों में से मनोनीत किया गया राज्य विधिज्ञ परिषद् का एक नामनिर्देशिती और वादकारी जनता के तीन प्रतिनिधि, जो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्देशित किए जाएंगे, समाविष्ट होंगे । न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित मामलों के सिवाय सभी समस्याएं, जो न्यायालय प्रणाली के प्रशासन में उद्भूत होती हैं, इस समिति के समक्ष प्रस्तुत की जा सकेंगी जो उन्हें सुलझाने के लिए उनका विचारण करेगी ।

4.8 इस समिति की सदस्यता तीन वर्ष की अवधि के लिए होनी चाहिए । समिति का अधिवेशन मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा बुलाया जा सकेगा किंतु समिति के किन्हीं भी दो सदस्यों की प्रार्थना पर उसका अधिवेशन ऐसी प्रार्थना प्राप्त होने की तारीख से एक सप्ताह की अवधि के भीतर बुलाया जाएगा ।

4.9 समिति के विचार-विमर्श का कार्यवृत्त उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा रखा जाएगा, जो समिति का संयोजक होगा । सभी निर्णय लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा लिए जाएंगे जिसका अर्थ होगा कि वे उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से लिए जाएंगे किंतु प्रयत्न सदैव सर्वसम्मति निर्णय के लिए ही किया जाना चाहिए ।

4.10 ऐसी ही समिति उच्चतम न्यायालय के स्तर पर भी नियुक्त की जानी चाहिए, किंतु उसमें अन्तर केवल इतना होगा कि उसमें राज्य विधिज्ञ परिषद् के नाम-निर्देशिती के बजाए

भारतीय विधिज्ञ परिषद् का एक नामनिर्देशिती होगा और राज्य के न्यायमंत्री के बजाए भारत सरकार का न्यायमंत्री होगा और राज्य के महाधिवक्ता के स्थान पर महाअटर्नी उसका सदस्य होगा ।

4.11 विधि आयोग का यह दृढ़ मत है कि संयुक्त उत्तरदायित्व की साझेदारी वाला यह भागीदारी सिद्धांत व्यवहारिक और साध्य होगा और उसमें संघर्ष तथा मुकाबले से बचने की अन्तर्निहित संभावना भी होगी ।

4.12 उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में मामलों की सुनवाई की प्रक्रिया की एक अप्रिय बात मौखिक बहस के प्रति विनम्र आदर की भावना है । विधि आयोग ने यह बात स्मरण कराते हुए कि संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय में मौखिक बहस की अवधि कड़ाई से सीमित रहती है जो प्राय: आधा घंटे, से अधिक की नहीं होती । इस तथ्य की ओर ध्यान दिया गया है कि यद्यपि हाउस आफ लार्डस में अग्रिम रूप से कोई भी लिखित पक्षपत्र प्रस्तुत नहीं किया जाता है, फिर भी मौखिक बहस औसत रूप से तीन दिन से अधिक की नहीं होती है और यदाकदा ही 20 दिन तक खिंचती[5] है और उसका न्यायालय के निष्कर्ष पर प्राथमिक बाध्य प्रभाव पड़ता है । अन्ततोगत्वा आयोग ने यह सिफारिश की कि मौखिक बहस प्रारम्भ की जाने के पूर्व पक्षकारों द्वारा अग्रिम रूप में ही बहस का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किए जाने की पद्धति अपनाई जाए और मौखिक बहस, जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा अनुज्ञात न किया जाए, केवल उन्हीं प्रतिपादनाओं तक सीमित रहनी चाहिए जो उस टिप्पण में उपवर्णित किए गए है, और उस टिप्पण पर मौखिक बहस[6] प्रारम्भ होने के कम से कम एक सप्ताह पूर्व उसकी प्रति विरोधी काउंसेलों द्वारा परस्पर आदान प्रदान कर दिया जाना चाहिए । आयोग ने मौखिक बहस[7] पर समय की पाबंदी लगाई जाने के संबंध में अपनी अनिच्छा व्यक्त की है ।

4.13 अठतीसवीं रिपोर्ट सन् 1979 में प्रकाशित हुई थी। उसमें बताए गए सुझावों की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करने के लिए, सन् 1979 से पहले के दो मामलों के प्रति निर्देश करना लाभप्रद होगा और तत्पश्चात् उक्त सिफारिशों की 3617 और उसके प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए सन् 1979 के बाद के दो मामलों के प्रति निर्देश करना उचित होगा।

4.14 भारत सरकार ने बैंककारी कंपनी (उपक्रमों का अर्जन और अन्तरण) अध्यादेश, 1969 के नाम से एक अध्यादेश जारी किया था जो 19 जुलाई, 1969 को प्रख्यापित किया गया था। इस अध्यादेश का स्थान बाद में एक अधिनियम ने ले लिया जिसका नाम बैंककारी कंपनी (उपक्रमों का अर्जन और अन्तरण) अधिनियम, 1969 है। आर० सी० कूपर नाम के एक व्यक्ति ने 11 न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष इस अध्यादेश और अधिनियम की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी थी। इस मुकदमे में बहस 37 दिनों तक चली थी। सुनवाई ता० 22 जुलाई, 1969 को प्रारम्भ हुई थी। सुसंगत समय पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को मिलाकर कुल 12 थी।

4.15 केशवानंद भारती नामक एक व्यक्ति ने संविधान[9] के चौबीसवें, पच्चीसवें और उनतीसवें संशोधनों की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी थी। इस मुकदमे की सुनवाई मुख्य न्यायमूर्ति सहित 13 न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने की थी। सुसंगत समय पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या मुख्य न्यायमूर्ति को मिलाकर 14 थी। किंतु दो न्यायमूर्तियों को, अर्थात् माननीय न्या० सी० ए० वैद्यलिंगम और माननीय न्या० वाई० वी० दुआ को तदर्थ न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया गया था। उक्त मुकदमे की सुनवाई 31 अक्तूबर, 1972 को प्रारम्भ हुई थी और 23 मार्च, 1973 को समाप्त हुई थी। उसका निर्णय 24 अप्रैल, 1973 को सुनाया गया था और बाद

दिन मुख्य न्यायमूर्ति सीकरी सेवानिवृत्त हो गए थे ।

4.16 उन अवधियों के दौरान, जब ऊपर उल्लिखित दोनों मुकदमों की सुनवाई की गई थी, न्यायधीशों की संख्या को देखते हुए, नैत्यिक ग्रहण किए जाने वाले मुकदमों के सिवाय अन्य कोई भी कार्य न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सका । बहरहाल, एक भी अन्तिम सुनवाई वाले मुकदमे पर विचार नहीं किया जा सका । जिस समय आयोग ने यह मत व्यक्त किया था कि मौखिक बहस में कमी को जाने का समर्थन नहीं किया जा सकता, उस समय ये अकाट्य सुस्पष्ट तथ्य उसके सामने थे ।

4.17 इस रिपोर्ट के बाद और उसकी सम्मुक्तियों और सिफारिशों के प्रकाशित होने के पश्चात्, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ, अग्रिम रूप से तर्क, विवरणों का आदान प्रदान और उन अग्रिम विवरणों में उठाए गए मुद्दों का सही-सही पालन सम्मिलित है, भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष दो और मामले बहस हेतु प्रस्तुत किए गए । ए० के० राय नामक व्यक्ति ने, जो कि संसद का एक मार्क्सवादी सदस्य था, जिसे राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश, 1980 के अधीन निरुद्ध किया गया था, इस अध्यादेश की और इस अध्यादेश[10] का स्थान लेने वाले पश्चात्वर्ती अधिनियम की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी थी । इस मुकदमे की सुनवाई पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष 9 दिसम्बर, 1980 को प्रारम्भ हुई थी और 30 अप्रैल, 1981 को समाप्त हुई थी । न्यायालय ग्रीष्मावकाश में मई, 1981 के प्रथम सप्ताह तक बंद रहा । न्यायालय के पुन: खुलने पर सात न्यायधीशों की एक न्यायापीठ ने एस० पी० गुप्त बनाम भारत संघ वाले मामले की सुनवाई प्रारम्भ कर दी जिसमें तत्कालीन विधि और न्याय मंत्री द्वारा 18 मार्च, 1981[11] को जारी किए गए एक परिपत्र की संवैधानिक विधिमान्यता को प्रश्नगत किया गया था । याचिकाओं के एक अन्य समूह की सुनवाई, जिसमें माननीय न्या० के० बी० एन० सिंह का

पटना से मद्रास को स्थानांतरण किए जाने का मामला अन्तर्वलित था, इसी याचिका के साथ भी की गई थी। श्री एस० एन० कुमार की एक तीसरी याचिका की सुनवाई भी इसी याचिका के साथ की गई। इस तीसरी याचिका में अपर न्यायाधीश के रूप में उनकी पदावधि का नवीकरण करने में सरकार के असफल रहने को प्रश्नगत किया गया था। इन याचिकाओं के समूह की सुनवाई 4 अगस्त, 1981 को प्रारम्भ हुई थी और लगभग 16 नवम्बर, 1981 तक चली थी जिसके पश्चात् उन न्यायाधीशों को, जिनसे मिलकर न्यायपीठ बनी थी, अपने निर्णय तैयार करने के लिए न्यायालय में बैठना बंद करना पड़ा था क्योंकि उन न्यायाधीशों में से, जिनसे मिलकर न्यायपीठ बनी थी, एक न्यायाधीश तारीख 1 जनवरी, 1982 को सेवानिवृत्त होने वाले थे। चार न्यायाधीश इन दोनों ही न्यायपीठों में सम्मिलित थे। इसका परिणाम यह निकला कि उन चारों न्यायमूर्तियों ने, जिन्होंने इन दोनों मामलों में भाग लिया था, केवल इन दोनों मामलों की सुनवाई में ही पूरा वर्ष बिता दिया किंतु इन दोनों मामलों में मौखिक बहस खत्म ही नहीं हो रही थी। मौखिक बहस में कमी न की जाने के संबंध में विधि आयोग के दृष्टिकोण का यही परिणाम है।

4.18 दीर्घकालिक मौखिक बहस की प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखने के लिए दिए गए प्रत्येक सुझाव का वस्तुतः ठीक उल्टा ही असर हुआ। उस पर नियंत्रण रखने में न्यायालय की विफलता स्पष्ट गोचर होने लगी। परिणामतः विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय के कामकाज की परीक्षा करने के पश्चात् अपना ध्यान उच्चतर न्यायालयों में मौखिक तथा लिखित बहस के प्रश्न पर केन्द्रित किया। उसने एक प्रश्नावली जारी की और 26 अप्रैल, 1984[12] को रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसने अपने सामने निम्नलिखित तीन प्रश्न रखे :

"यदि दोनों में से प्रत्येक पक्ष की मौखिक बहस को आधा

घंटे तक के लिए निर्बन्धित कर दिया जाए तो क्या इससे अधिक मुकदमों का निपटारा सुकर हो जाएगा ?

क्या ऐसी प्रक्रियात्मक अपेक्षा से, जो काउंसेल के लिए लिखित पक्षपत्र फाइल करना बाध्यकर बनाती हो, मौखिक बहस में कमी आएगी ?

क्या कुछ अपीलों का निपटारा मौखिक बहस सुने बिना ही कर दिया जाना चाहिए ?

उसकी सिफारिश में, यह मत व्यक्त किया गया था कि "इस विषय को न्यायाधीश के सद्भाव पर ही छोड़ा जा सकता है जो काउंसेलों से विचार-विमर्श करने के पश्चात्, मुकदमे की प्रकृति और बहस किए जाने वाले विवाद्यकों को ध्यान में रखते हुए, पहले से ही समय नियत कर सकता है।"[13] उसने "कम से कम फिलहाल के लिए, सभी मामलों में लिखित बहस फाइल करने की अनिवार्य अपेक्षा" लागू की जाने की सिफारिश करने से इंकार कर दिया। अतः स्थिति वही रही जो रिपोर्ट के पूर्व थी और वह स्थिति बिगड़ती ही रही है। अतः अब वह समय आ गया है जब उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में मुकदमों की सुनवाई में मौखिक बहस को दी गई प्राथमिकता का गम्भीरतापूर्वक पुनर्विलोकन किया जाए।

4.19 अन्तहीन मौखिक बहस की एक दूसरी खराबी और है। यह सर्वविदित है कि काउंसेल न्यायालय में हाजिर होने की दैनिक फीस लेते हैं। मुकदमे का खर्च मौखिक बहस की दीर्घकालिकता के सीधे अनुपात में बढ़ता जाता है। यह तो किसी मामले के लिए भी नहीं कहा जा सकता कि काउंसेल अपनी दैनिक फीस बढ़ाने के लिए जानबूझकर लम्बी, घुमावदार और अन्तहीन मौखिक बहस करते हैं। किंतु इस बात की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि मौखिक बहस का मुकदमे का खर्च बढ़ने के साथ सीधा संबंध है और दैनिक

फीस बहुत अधिक हो गई है, यह बात इस व्यवसाय में लगे व्यक्तियों के पास आने जाने वाले पक्षकारों की काना-फूसी से जानी जा सकती है।

4.20 यदि मौखिक बहस के परिणामों को, अर्थात् न्यायालय के समय की निपट बरबादी और मुकदमेबाजी के बढ़ते हुए खर्चे को मिलाकर देखें तो, भले ही भारतीय न्याय प्रशासन की पद्धति में मौखिक बहस को कितने ही समादर की दृष्टि से क्यों न देखा गया हो, हम पाते हैं कि वह समय आ गया है जब लम्बी मौखिक बहस पर अंकुश और नियंत्रण लगाया जाना चाहिए। साथ ही, इसको एकदम समाप्त कर देना भी कठिन होगा। हां! किसी युक्तिसंगत दृष्टिकोण से मौखिक बहस में प्रभावी रूप से कमी की जा सकेगी। इसका एक अन्य लाभ सही और संक्षिप्त निवेदन प्रस्तुत करना भी होगा।

4.21 अत: यह सिफारिश की जाती है कि लिखित प्रस्तुतियां, उस निर्णयज विधि सहित जिसका कि अवलम्बन किया जाना है, प्रत्यर्थी पर तामील होने और उसके हाजिर होने की तारीख से चार सप्ताह के भीतर न्यायालय को अवश्य पेश कर दी जानी चाहिए। अपीलार्थी/याची की प्रस्तुतियां प्राप्त होने की तारीख से चार सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी अपनी लिखित प्रस्तुतियां पेश करेगा। तत्पश्चात् दो सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर भी फाइल कर दिया जाना चाहिए। इसके बाद ही वह मुकदमा सुनवाई के लिए तैयार माना जाएगा। लिखित पक्षपत्र उन सदस्यों को परिप्रेषित कर दिया जाना चाहिए जिनसे मिलकर न्यायपीठ बनी हो। वे प्रत्येक पक्षकार को पहले से ही दिया गया समय विनिर्दिष्ट करेंगे। किसी भी मुकदमे की सुनवाई एक दिन के पूरे काम के घंटों से अधिक समय तक नहीं की जानी चाहिए। इससे मौखिक

बहस की अवधि में प्रभावी रूप से कमी आएगी और इससे न्यायालय का भी काफी समय बचेगा जिससे वह और अधिक मुकदमों के सुने जाने के लिए उपलब्ध होगा ।

4.22 मौखिक बहस की इस अभिरुचि का एक तीसरा पहलू भी है और वह है यह कि यथासम्भव अधिक से अधिक उपलब्ध नजीरें पेश की जानी चाहिएं चाहे वे लागू होती हों अथवा न लागू होती हों । संविधान के अनुच्छेद 141 में यह उपबंध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होगी । परिणामतः, इस न्यायालय का प्रत्येक आदेश, भले ही उसमें कोई भी विधि अधिकथित न की गई हो, विधि रिपोर्टों में संप्रकाशित होता है । उदाहरणार्थ, के० दुराइस्वामी[14] नामक व्यक्ति ने, जिसको भारतीय दंड संहिता की धारा 451, 380, 201 और 149 के अधीन अपराध करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया था और प्रत्येक आरोप के लिए एक वर्ष के कठिन कारावास से दंडादिष्ट किया गया था, और इस दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा कर दी गई थी, संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील के लिए उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत के लिए एक याचिका फाइल की थी । ऐसा प्रतीत होता है कि केवल दंडादेश के प्रश्न तक ही सीमित रहते हुए विशेष इजाजत दे दी गई । सुनवाई के पश्चात् न्यायालय ने 14 पंक्तियों का यह आदेश किया कि अपीलार्थी के दंडादेश में कमी की जाने की गुंजाइश है । इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि अपीलार्थी सरकारी सेवक है जो अपनी दोषसिद्धि के कारण, अपनी सेवा और अपनी पेंशन संबंधी फायदे भी खो देगा, उसके दंडादेश को भोगी जा चुकी दंड की अवधि तक, जो लगभग 3 मास थी, कम कर दिया और

500 रुपए का जुर्माना अधिरोपित कर दिया । न्यायालय के प्रति किसी असम्मान का आशय न रखते हुए, उस अपील में विधि का कोई भी प्रश्न अन्तर्वलित नहीं था । दंडादेश का विषय ऐसा है जो विचारण न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ा गया है । वैकल्पिक आदेश में केवल तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है जब वह स्पष्टत: अनुचित पाया जाए । ऐसा कोई भी निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है । क्षणमात्र के लिए भी यह प्रसंगत नहीं किया गया है कि न्यायालय को ऐसा करने की शक्ति थी या नहीं । किंतु यदि एक बार विनिश्चय संप्रकाशित कर दिया जाता है - ऐसा किस प्रयोजन के लिए किया गया है यह अभिनिश्चित करना कठिन हो - तो उसका किसी अन्य ऐसे मामले में [redacted] अवलम्ब लिया जा सकेगा जहां प्रार्थना केवल दंडादेश में कमी करने के लिए की गई है । इस पृष्ठ पर एक उच्च न्यायालय के एक ज्येष्ठ न्यायाधीश से विचार-विमर्श करने पर यह पता चला कि विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित तीन वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को, जिस की पुष्टि उच्च न्यायालय ने कर दी थी, उच्चतम न्यायालय ने घटा कर ढाई वर्ष कर दिया था । इस रीति से मामले का निपटारा किए जाने में कभी भी कोई विधि अधिकथित नहीं की जाती है । फिर भी, वह विधि [redacted] रिपोर्टों में संप्रकाशित होता है । इसी बाद में नजीरों की बहुतायत हो जाती है । जितनी ही यह संस्था पुरानी होती जाएगी, उतने ही अधिक से अधिक विनिश्चय होंगे और बहस के समय उतने ही अधिक निर्णय उद्धृत करने की प्रवृत्ति अप्रतिरोध्य होती जाएगी । मौखिक बहस में, जब नजीरों का अवलंब लिया जाएगा तब शीर्ष - टिप्पण पढ़े जाएंगे, सुसंगत पैरा पढ़े जाएंगे और यह एक अनन्त सिलसिला बन जाएगा । अत: मौखिक बहस की इस [redacted] दूसरी बुराई को सीमित किए जाने की आवश्यकता है । ऐसा उन पैरावों सहित, जिनका अवलम्ब

किया जाता है, नजीरों की सूची न्यायालय में पहले ही प्रस्तुत की जाने पर जोर देकर किया जा सकता है और मौखिक बहस में उनके प्रति निर्देश को पूरी तरह खत्म किया जाना चाहिए। न्यायालय को उसकी इजाजत नहीं देनी चाहिए।

4.23. मौखिक बहस के विषय में यहां की गई सिफारिशों का संयुक्त प्रभाव यह होगा कि इससे न्यायालय का काफी समय बचेगा और इससे बहस की अवधि में कमी आएगी जिससे और अधिक मुकदमों को निपटाने के लिए न्यायालय के पास उसका मूल्यवान समय भी बचेगा।

4.24. इस रिपोर्ट के विषय से सुसंगत पहले की जा चुकी किसी भी सिफारिश की पुनरावृत्ति से विवेकपूर्वक बचते हुए, यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि बकाया मुकदमों को कम करने से सुसंगत कतिपय सुझावों पर, जिनकी हाल ही में विभिन्न वृत्तिक निकायों द्वारा परीक्षा की जा चुकी है, पहले ही विधि आयोग विचार कर चुका है, क्योंकि उसने अपना काम न्यायिक सुधारों के प्रश्न से आरम्भ किया था। यह विश्वास पनपता जा रहा है कि निर्णय करने की प्रक्रिया में कौशल विकास के लिए कुछ कार्यक्रम वांछनीय है। आस्ट्रेलिया ने आस्ट्रेलियाई न्याय प्रशासन संस्थान की स्थापना की है। न्यूजीलैण्ड को इस संस्थान के क्रियाकलाप में भाग लेने की सुविधा प्रदान की गई। उच्च न्यायालय जैसी जनरलिस्ट कोर्ट के न्यायाधीशों से, निरन्तर ऐसी विषयवस्तु से उद्भूत होने वाले विवादकों पर विचार करने की अपेक्षा की जाती है जिनके संबंध में उन्हें पहले से जरा भी अनुभव नहीं होता, क्योंकि या तो वे विधि व्यवसाय में उनके अपने क्षेत्र नहीं होते या फिर वे उस समय थे नहीं, जब वे न्यायालय में विधि व्यवसाय किया करते थे। ऐसी स्थिति की गम्भीरता उस

समय सामने आती है जब हमें यह याद आता है कि विधि व्यवसाय में विशेषज्ञता एक स्वीकृत वास्तविकता बन गई है। ऐसे विशेषज्ञ अधिवक्ताओं के न्यायिक समनुदेशनों के लिए चुने जाने पर उन्हें निश्चय ही अपने विशेषज्ञ ज्ञान के विषय से बाहर की विषयवस्तु में प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। किन्तु न्यायाधीशों के प्रशिक्षण और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के लिए एक अकादमी की सिफारिश करते समय यहां इसी बात को ध्यान में रखा गया है और इस कारण उस पर और आगे चर्चा नहीं की गई है।

4.25 विधि जिस रूप में कि वह आज विद्यमान है, पक्षकारों को माध्यस्थम् या मध्यस्थता हेतु विवश करने के लिए न्यायालय को कोई शक्ति प्रदान नहीं करती। ऐसा केवल पक्षकारों की सहमति से ही किया जा सकता है। दोनों पक्षकारों में से कोई न कोई एक मामले को लम्बा खींचने में हितबद्ध होता है। मुकदमें में और अधिक देर करने के लिए ऐसे साक्षियों की परीक्षा करने की प्रवृत्ति पाई जाती है जो बिल्कुल भी आवश्यक नहीं होते। न्यायालय इसे तब तक नहीं रोक सकता जब तक न्यायालय ऐसा सकारण आदेश लेखबद्ध करने के लिए तत्पर न हो कि पक्षकार तंग करने वाला दृष्टिकोण अपनाने का दोषी है। यदि न्यायालय पक्षकारों को मध्यस्थता के लिए या अनिवार्य माध्यस्थम् के लिए विवश कर सकते होते तो जो पक्षकार ऐसी चालें अपना कर मुकदमें को विलम्बित करने में हितबद्ध होगा, उसे भारी खर्च उठाना होगा। न्यायालय समय का अपव्यय न्यायालयों द्वारा तैयार किए गए खर्चे के बिल में नहीं दिखाया जाता है। किन्तु यदि मामला मध्यस्थ के पास है, जिसे उसके समय के अनुसार संदाय किया जाएगा तो वह इस बात का भी अवधारण करेगा कि कौन सा पक्षकार मामले में विलम्ब के लिए जिम्मेदार है और

तदनुसार खर्चा अधिनिर्णीत करेगा । अत: यह आवश्यक है कि पक्षकारों को मध्यस्थता या माध्यस्थम् के लिए विवश करने की शक्ति उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय को प्रदान की जाए ।

4.26 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 1 के अनुसार, अपने विपरीत जाने वाले निर्णय के विरुद्ध अपील करने वाला पक्षकार, उस डिक्री की, जिसके विरुद्ध अपील की गई है (जब तक न्यायालय उससे अभिमुक्ति प्रदान न कर दे) और उस निर्णय की, जिस पर वह अपील आधारित है, एक प्रति संलग्न करने के लिए बाध्य है । वह परिसीमा-काल, जिसके भीतर अपील की जानी चाहिए, उस समय सीमा तक बढ़ जाएगा जो डिक्री की प्रति के लिए आवेदन किए जाने की तारीख और प्रति तैयार होने के बीच लगता है । यदा-कदा ऐसे विलम्ब की अवधि इतनी अधिक होती है कि अपील करने के लिए परिसीमाकाल बढ़कर दोगुना, तिगुना या असाधारण मामलों में दस गुना तक हो जाता है । अनुभव से यह दर्शित होता है कि डिक्री की प्रति की मुश्किल से ही कोई सुसंगति या आवश्यकता होती है या उस पर इस बात का निश्चय करने के प्रयोजनार्थ शायद ही विचार किया जाता होगा कि आदेश 41, नियम 11 के अधीन अपील ग्रहण की जानी चाहिए या नहीं । विगत समय में, सिविल प्रक्रिया संहिता और उच्च न्यायालयों में अपीलों की सुनवाई करने की प्रक्रिया के बारे में विचार करने वाले आयोग और समितियों ने, डिक्री की प्रति के अपील के ज्ञापन के साथ लगाए जाने की अपेक्षा करने वाले उपबंध को खत्म करना नहीं चाहा है, जो अब पुरातन पड़ चुकी है और उसका अब कोई उपयोग नहीं रहा है । विधि आयोग का यह मत है कि आदेश 41, नियम 1 को इस प्रकार

संशोधित किया जाए जिससे कि डिक्री की प्रमाणित प्रति को अपील के ज्ञापन के साथ संलग्न किया जाना बिल्कुल ही बाध्यकर न हो और अपील के ज्ञापन के साथ ही निर्णय का प्रवर्तनशील भाग पेश करके भी अपील फाइल की जा सके ।

4.27 प्राचीन समय में, जब मुकदमे मंथर गति से आगे बढ़ते थे, तब यह माना जाता था कि सामान्यत: उच्च न्यायालय में मुकदमों की सुनवाई खण्ड न्यायपीठ द्वारा की जानी चाहिए जिसमें कम से कम दो न्यायाधीश हों । यह दृष्टिकोण इस तथ्य से प्रभावित था कि संविधान के प्रादुर्भाव पर भारत के उच्चतम न्यायालय की स्थापना होने तक, उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध अपील प्रिवी कौंसिल में की जाती थी जो कि उच्च न्यायालय तक पहुंचने वाले 90 प्रतिशत व्यक्तियों की पहुंच से दूर थी । इसलिए, मानव भूल की किसी संभावना से बचने के लिए यह माना जाता था कि एक की अपेक्षा दो का निर्णय बेहतर होता है । स्थिति में अब भारी परिवर्तन आ गया है । अब चूंकि उच्चतम न्यायालय यहीं पर है, इसलिए उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होने वाले पक्षकार को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अवसर प्राप्त है । खण्ड न्यायपीठ द्वारा सुनवाई एक विलासिता है जिसका इसमें आगे दिए जाने वाले कारणों से समर्थन नहीं किया जा सकता । जबकि सिविल अधिकारिता में केवल जिला न्यायाधीश ही अपील सुनता है या केवल अधीनस्थ न्यायाधीश ही किसी धनीय मूल्य के वाद का विचारण करता है, किन्तु उच्च न्यायालय में उसी मामले पर विचार करने में दो न्यायाधीशों का समय खर्च होता है । कलकत्ता उच्च न्यायालय को, जो बकाया मुकदमों के मामले में अंकों में दूसरे स्थान पर आता है, अब भी सिविल पुनरीक्षण

आवेदन की खण्ड न्यायपीठ द्वारा सुनवाई करने की सुविधा प्राप्त है। दाण्डिक अधिकारिता में, मजिस्ट्रेट अकेले ही दाण्डिक मामले का विचारण करता है, इसी प्रकार सेशन न्यायाधीश भी करता है। किन्तु, कुछ उच्च न्यायालयों में जैसे ही दोषसिद्धि के लिए तीन वर्ष और उससे अधिक का दण्डादेश दिया जाता है अथवा कुछ अन्य उच्च न्यायालयों में जैसे ही सात वर्ष और उससे अधिक का दण्डादेश दिया जाता है अथवा और भी कुछ अन्य उच्च न्यायालयों में जैसे ही दस वर्ष और उससे अधिक का दण्डादेश दिया जाता है। अब वह समय आ गया है जब इस विलासिता का त्याग किया जाए। वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय में प्रत्येक मुकदमे की सुनवाई एकल न्यायाधीश द्वारा की जाएगी, सिवाय वहां के जहां कानून में इसके प्रतिकूल उपबंध किया गया हो। अतएव, यह सिफारिश की जाती है कि न्यायपीठों में न्यायाधीशों की संख्या ~~मुकदमे की प्रकृति से सुसंगत होने की बाबत~~, उच्च न्यायालय के नियमों को इस प्रकार संशोधित किया जाए जिससे कि वहां के सिवाय, जहां कानून में उसके प्रतिकूल उपबंध किया गया हो, उच्च न्यायालय में आने वाले प्रत्येक मुकदमे की सुनवाई एकल न्यायाधीश द्वारा की जाने के लिए उपबंध हो जाए।

4.28 विचारण-पूर्व प्रक्रियाओं के लिए भी एक सुझाव है, किन्तु इस पहलू की, विधि आयोग नगरीय मुकदमों की बाबत विचार करते समय परीक्षा करना चाहता है। अतः पुनरावृत्ति से बचने के लिए यहां उस पर विचार नहीं किया गया है।

4.29 अंत में, विधि आयोग केवल एक नई विचारधारा को ध्यान में रखेगा, किन्तु इसके प्रयोग का समय भारत में अभी नहीं आया है। एक प्रश्न यह उठाया जा रहा है कि 'क्या न्यायालयों को सिविल काम ही करते रहने के लिए यथावत संघर्ष करना चाहिए? धीरे-धीरे यह विचारधारा

विकसित हो रही है कि प्राइवेट पदाकारों को, जिनके सिविल विवाद हों, राज्य के न्यायालयों से बाहर अपने विवादों को सुलझाने के लिए स्वयं अपना ही न्यायाधिकरण चुनना चाहिए। न्यायालय-प्रणाली वहीं उपलब्ध होनी चाहिए जहां लोक विधि का अतिक्रमण किया गया हो और ऐसे अतिक्रमण के कारण समाज को क्षति पहुंचने की सम्भावना हो। आज नीचे से लेकर ऊपर तक के न्यायालयों में अधिकांश प्राइवेट विवाद ही न्यायालय की डाकेटों में भरे पड़े हैं। यह एक अत्यन्त अतिवादी दृष्टिकोण है जिसके लिए हम अभी परिपक्व नहीं हो पाए हैं। हम यहां इसके पूर्व उठाए गए प्रश्न का न्यूजीलैण्ड उच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति इशेलवॉम[16] द्वारा दिए गए उत्तर से ही संतुष्ट हो सकते हैं। उसे यहां उद्धृत कर दिया जाए :-

"किसी भी लोकतंत्र में जो लोकतंत्र ... कहलाने योग्य है, विवादों को सुलझाने के पर्याप्त साधनों का इन्तजाम होना चाहिए। जबकि हम सभी वेस्टमिंस्टर प्रतिमान को ही इस तंत्र का आदर्श रूप मानने के अभ्यस्त हो चुके हैं, जैसा कि लार्ड डेवलिन ने "दि जज" में कहा है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह इतने प्रकार के विचारण का उपबंध करे जितने उन विविध प्रकार के विवादों के लिए आवश्यक हों जो आम तौर पर उठ सकते हैं, जिससे कि प्रत्येक प्रकार के मुकदमे के लिए एक ऐसी प्रक्रिया उपलब्ध हो जो युक्तियुक्त खर्च पर उचित स्तर का न्याय प्रदान कर सके। सभी के लिए विधि के अधीन समान न्याय/नियम का यथाशब्द अर्थ नहीं लगाया जा सकता। तब भविष्य में श्रेयस्कर पद्धतियां कौन सी सकती हैं। कुछ लघु दावा अधिकरणों का गठन किया जा सकता है जिससे उन्हें व्यक्तियों के बीच अधिकांश विवादों के संबंध में कार्यवाही करने में समर्थ बनाया जा सके ; अधिकांश प्रकार के विवाह-संबंधी विवादों का प्रशासनिक रूप से निपटारा किया जा सके ; इस समय

अध्याय 5

कंप्यूटर प्रौद्योगिकी

5.1. जबकि विश्व और हमारा देश इक्कीसवीं सदी की ओर तेजी से बढ़ रहा है, कंप्यूटर सभी क्षेत्रों की गतिविधियों पर छा गए हैं, आधुनिक प्रौद्योगिकीय प्रगति ने कार्यालयों के कामकाज में मौलिक रूप से परिवर्तन ला दिया है और काम के ढंग और पद्धति को सुकर बनाने के लिए नई-नई कलवस्तुएं उपलब्ध हो गई हैं किन्तु दुर्भाग्यवश न्यायपालिका जीवन की मुख्य धारा से बाहर काफी पीछे रह गई है। अधीनस्थ न्यायालयों की तो बात ही दूर, उच्च न्यायालयों तक में अभी तक उन्नीसवीं सदी के पुरानी बनावट के ही टाइपराइटर चल रहे हैं। अधिकांश उच्च न्यायालयों में फोटोकोपियर अज्ञात हैं। टैलेक्स सुविधा तो कहीं पर भी सुलभ नहीं है। कंप्यूटर तो उच्चतम न्यायालय तक भी नहीं पहुंचे हैं। केवल कुछ वर्ड प्रोसेसरों को ही हाल में उपयोग में लाया गया है। वैद्युत और इलेक्ट्रोनिक टाइपराइटर विलासिता की वस्तुएं हैं और वे न्यायालयों की पहुंच से अब भी बाहर हैं। लेखाकार्य हाथ से लेखा प्रक्रिया द्वारा ही किया जाता है। नकलें टाइपराइटर से ही तैयार की जाती हैं जिसके फलस्वरूप वे मूल की अपेक्षा अधिक अपाठ्य होती हैं। न्यायालय परिसर वाले टेली प्रिंटर तो न्यायपालिका के लिए अज्ञात है। यहां तक कि डिक्टाफोन का प्रयोग भी अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ है।

5.2. क्या कोई ऐसी संस्था, जिसका आवश्यकता के कारण आधुनिक होना, सम्पूर्ण विश्व की विचारधारा के अनुरूप होना और परिवर्तन के रुख के साथ-साथ चलना अपेक्षित है, प्रौद्योगिकी की क्रान्ति को यूं ही गुजर जाने दे और उससे अप्रभावित बनी रहे। न्याय-प्रशासन आज जिस समस्या का सामना कर रहा है और जिसका समाधान करने में कठिनाई अनुभव कर रहा है वह बकाया मुकदमों, मामलों के निपटारे में विलम्ब, अत्यधिक काम से लदे

न्यायाधीश और उन्नीसवीं सदी के कामकाज के उपकरणों की समस्या है । इन सबके कारण भी वादों, संविवादों और मुकदमों की सुनवाई देर से हो पाती है । यह स्थिति तब तक नहीं सुधर सकती जब तक आधुनिक उपकरण उपलब्ध नहीं कराए जाते तथा संगठन और प्रबन्ध की पद्धति में उन्नति के उपकरण न्यायालयों द्वारा अपनाए नहीं जाते ।

5.3 विधि आयोग की यह राय है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय में लंबित मुकदमों की एक सूची रखने के लिए रजिस्ट्री में कंप्यूटरी प्रणाली शुरु की जाए जिससे कि बटन दबाते ही सारी जानकारी उपलब्ध हो सके ।

5.4. प्रत्येक उच्च न्यायालय में अपने विनिश्चयों का कंप्यूटरीकृत लाइब्रेरी इंडेक्स होना चाहिए जिससे कि किसी भी परस्पर विरोधी विनिश्चय से बचने के लिए किसी कथित मुद्दे पर कोई विनिश्चय तुरन्त उपलब्ध हो सके, जब तक कि उसे उलटने के प्रयोजन के लिए वह विनिर्दिष्टत: अपेक्षित न हो ।

5.5 प्रत्येक उच्च न्यायालय में इतने वर्ड-प्रोसेसर होने चाहिए जितने उसकी वाद संस्थिति, निर्णयों के निपटारे तथा निर्णयों और सभी अन्य दस्तावेजों के अभिलेख रखने की अपेक्षा से संगत हों । प्रत्येक न्यायाधीश के निवासस्थान (कार्य) पर एक वर्ड-प्रोसेसर की व्यवस्था की जानी चाहिए । प्रत्येक न्यायाधीश के लिए एक डिक्टाफोन मशीन की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

5.6 प्रत्येक अभिलेखागार को एक कंप्यूटरीकृत माइक्रो-फिल्मिंग केन्द्र से सम्पन्न करके आधुनिक बनाया जाना चाहिए जिससे स्थान की बचत हो, धूल मिट्टी दूर हो और महत्वपूर्ण अभिलेखों को स्थायी रूप से रखे जाने के नई पद्धति संस्थापित की जा सके । न्यायाधीशों की आवश्यकताओं के लिए उनके निवासस्थान पर

और कार्यालय दोनों में पर्याप्त इलेक्ट्रोनिक/विद्युत टाइपराइटर होने चाहिए ।

5.7 प्रत्येक उच्च न्यायालय में फोटोकोपियर मशीनें होनी चाहिए जिनकी गति इतनी हो जितनी उच्च न्यायालय में काम की मात्रा से संगत हो, ताकि निर्णय पर हस्ताक्षर कर दिए जाने के पश्चात् अथवा जीरोक्स किए जाने के लिए दस्तावेज के तैयार होने के चौबीस घंटे के भीतर उसकी नकलें उपलब्ध कराई जा सकें । जीरोक्स प्रति में उनके मिलान में समय नहीं लगाया जाना चाहिए क्योंकि वह मूल की सही फोटो प्रतिकृति होती है । नकल प्रभारों की संगणना, लागत तथा मशीनों के दीर्घकालिक अवक्षयण और उन पर व्यय की प्रतिपूर्ति को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए ।

5.8 प्रत्येक उच्च न्यायालय को टैलेक्स से जोड़ा जाना चाहिए जिससे कि उच्चतम न्यायालय टैलेक्स द्वारा आदेश संसूचित कर सके । इससे ~~नकल से~~ ऐसी बुरी घटना होने से बचा जा सकेगा जो उच्चतम न्यायालय में घटित हो चुकी है जिसमें एक अभियुक्त के पक्ष में उच्चतम न्यायालय के नाम में जमानत के आदेश की कूटरचना कर दी गई थी । उच्च न्यायालयों के कार्यकरण को आधुनिक बनाने के लिए ये सब न्यूनतम अपेक्षाएं हैं और इन पर किया गया कोई भी व्यय एक विकासशील देश में एक सामाजिक खर्च माना जाता है जो कि विधि शासन के सिद्धान्त पर आधारित होता है ।

अध्याय 6

निष्कर्ष

6.1 यहां की गई सिफारिशें उन सिफारिशों के अतिरिक्त हैं जो पहले की जा चुकी हैं और जिन्हें परिशिष्ट-1 में उपवर्णित किया गया है । जहां पहले की जा चुकी सिफारिशों से कोई विचलन किया गया हो वहां इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को कार्यान्वित किया जाए ।

6.2 इस रिपोर्ट से एक उल्लेखनीय विचलन यह है जहां उच्च न्यायालय की अधिकारिता से उन विषयों को अपवर्जित करके उसकी अधिकारिता में काफी कमी की गई है, जिन विषयों के संबंध में विशेषज्ञ न्यायालयों/अधिकरणों द्वारा विशेषज्ञीय कार्यवाही की जानी अपेक्षित है । निचली न्याय प्रणाली की ऐसी पुनर्रचना की जाने के पश्चात्, जिस रूप में विधि आयोग द्वारा सिफारिश की गई है, द्वितीय अपीलों की संख्या में काफी कमी आ जाएगी । यदि विधि आयोग की सिफारिशें[2] को कार्यान्वित किया जाता है तो रिक्तियां शीघ्र ही भरी जा सकेंगी । यदि सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीश को उसके उत्तरवर्ती ~~उत्तराधिकार~~ के आने तक पद पर बने रहने के लिए अनुज्ञात कर दिया जाता है, जैसी कि यहां सिफारिश की गई है, तो उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या सदैव पूरी बनी रहेगी । इसके अतिरिक्त, यदि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की सेवाएं बकाया मुकदमों के निपटाने के लिए ली जा सकें और मौखिक बहस में कमी की जा सके, जैसी कि यहां सिफारिश की गई है, तो कोई भी परिनिष्ठित रूप से

विश्वास के साथ यह कह सकेगा कि उच्च न्यायालय अपने बकाया मुकदमों को निपटाने और अपने आने वाले [illegible] कार्यभारों की सुचारु व्यवस्था करने में समर्थ हो सकेगा और तब बकाया मुकदमों का यह दानव अधिक से अधिक दो वर्ष की अवधि के भीतर गायब हो जाएगा । यह आशा यहां प्रस्तुत की गई सिफारिशों के प्रभावी कार्यान्वयन पर आधारित है ।

ह०
(डी०ए० देसाई)
अध्यक्ष

ह०
(वी०एस० रमादेवी)
सदस्य-सचिव

नई दिल्ली
29 फरवरी, 1988

विषय और संदर्भ

अध्याय 1

1. भा० वि० आ०, ग्राम न्यायालय संबंधी रिपोर्ट(1986)
2. भा० वि० आ०, पचानबेवीं रिपोर्ट(1984)
3. भारत का संविधान, अनुच्छेद 215.
4. स्रोत : भारत सरकार के विधि औरन्याय मंत्रालय की वर्ष 1986-87 की वार्षिक रिपोर्ट, पृष्ठ 35.
5. स्रोत : लोक सभा अतारांकित प्रश्न सं0 1793, तारीख 18 नवम्बर, 1987 का उत्तर ।
6. प्राक्कलन समिति की इकतीसवीं रिपोर्ट(1985-86) पृष्ठ 19
7. उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति की रिपोर्ट, 1949

   भा० वि० आ०, न्याय प्रशासन के सुधारसंबंधी चौदहवीं रिपोर्ट (1958),

   भा० वि० आ० सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 संबंधी सत्ताईसवीं रिपोर्ट(1964)

   भा० वि० आ०, दंड प्रक्रियासंहिता, 1898 संबंधी इकतालीसवीं रिपोर्ट(1969),

   भा० वि० आ०, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 संबंधी चौवनवीं रिपोर्ट(1973)

   भा० वि० आ०, उच्चतर न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता संबंधी अठावनवीं रिपोर्ट(1974),

   उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति रिपोर्ट, 1972

   भा० वि० आ०, उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मुकदमों संबंधी उन्यासीवीं रिपोर्ट (1979),

   भा० वि० आ०, उच्चतर न्यायालयों में मौखिक और लिखित बहस संबंधी निन्यानवेवीं रिपोर्ट(1984),

   सतीश चंद्र समिति की रिपोर्ट, 1986

8. भा० वि० आ०, न्याय प्रशासन के सुधार संबंधी चौदहवीं रिपोर्ट(1958)
9. भा० वि० आ० सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 संबंधी सत्ताईसवीं रिपोर्ट (1964)
10. भा० वि० आ०, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 संबंधी चौवनवीं रिपोर्ट(1973)
11. उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति की रिपोर्ट(1972)
12. भा० वि० आ०, उच्चतर न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता संबंधी अठ्ठावनवीं रिपोर्ट(1974),पृष्ठ 1
13. भा० वि० आ०, उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मुकदमों संबंधी उन्नासीवीं रिपोर्ट (1979)
14. सतीश चंद्र समिति (1986),पृष्ठ 192.
15. भा० वि० आ०, उच्चतर न्यायालयों में मौखिक और लिखित बहस संबंधी निन्नानवेवीं रिपोर्ट ।
16. आनरेबिल सर फ्रांसिस बर्ट, मुख्य न्यायमूर्ति, पश्चिमी आस्ट्रेलिया उच्चतम न्यायालय "दि मूविंग फिंगर औरदि इररिमूवेबिल डिजिट", 61(9), आस्ट्रेलियन ला जर्नल(1987), पृष्ठ 468.
17. ऊपर पैरा 1.5 देखिए ।
18. भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति माननीय न्या० पी० एन० भगवती का 26 नवम्बर,1986 के विधि दिवस उत्सव के अवसर पर भारत के उच्चतम न्यायालय में दिया गया भाषण ।
19. भारत का संविधान, अनुच्छेद 214.
20. भारत का संविधान, अनुच्छेद 226.
21. भारत का संविधान, अनुच्छेद 227.
22. भा० वि० आ०, अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के निर्माण संबंधी 116 वीं रिपोर्ट(1986), अध्याय 3, पृष्ठ 26,27.
23. भा० वि० आ०, ग्राम न्यायालय संबंधी 114वीं रिपोर्ट(1986)
24. (1985) 2 एस० सी० सी० 197.
25. भा० वि० आ०, कर न्यायालयों संबंधी 115 वीं रिपोर्ट (1986) ,पृष्ठ 16.

26. भा० वि० आ०, श्रम न्यायनिर्णयन में राष्ट्रीय एकरूपता के लिए न्यायाधिकरण संबंधी 122वीं रिपोर्ट(1987).

27. भा० वि० आ०, उच्चतर शिक्षा केन्द्रों को अन्तर्विलित करने वाले विवाद : न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण संबंधी 123वीं रिपोर्ट(1987)

28. ऊपर पैरा 1.5 देखिए ।

29. भा०वि० आ०, 121वीं रिपोर्ट(1987)

अध्याय 2
----

1. भा० वि० आ०, न्याय प्रशासन के सुधार संबंधी 14वीं रिपोर्ट (1958),पृष्ठ 123

2. स्रोत : उच्च न्यायालयों में मामलों की संस्थिति, निपटारे और लम्बित रहने विषयक वर्ष 1985 का विश्लेषण (भारत सरकार , विधि और न्याय मंत्रालय द्वारा संकलित) 26 अक्तूबर,1987.

3. भा० वि० आ०, 14वीं रिपोर्ट(1958),अध्याय 6.

4. भा० वि० आ०, न्यायिक नियुक्तियों के लिए नए अधिकरण संबंधी 121वीं रिपोर्ट(1987),पृष्ठ 43.

अध्याय 3
----

1. भा० वि० आ०, न्यायिक नियुक्तियों के लिए नए अधिकरण संबंधी 121वीं रिपोर्ट (1987),पृष्ठ 43.

2. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को पत्र की प्रति(परिशिष्ट 2 और 3).

3. भारत का संविधान, अनुच्छेद 130.

4. ऊपर पैरा 3.1 देखिए ।

अध्याय 4
----

1. भा० वि० आ०, उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मुकदमों संबंधी 79वीं रिपोर्ट(1979)

2. भारत का संविधान, अनुच्छेद 229.

3. भारत का संविधान, अनुच्छेद 233 और 235.

4. "विंड्स आफ चेंज इन दि कोर्ट हाउस" -माननीया श्रीमती न्या0 एचेलबांम, 61(9)(1987) आस्ट्रेलियन लॉ जर्नल, पृष्ठ 544.

5. भा0 वि0 आ0, 79वीं रिपोर्ट (1979), पैरा 6.6, 6.7 और 6.8, पृष्ठ 544.

6. पूर्वोक्त, पैरा 6.19, पृष्ठ 38

7. पूर्वोक्त पैरा 6.24

8. आर0 सी0 कूपर बनाम भारत संघ(1970) 1 एस0 सी0 सी0 248.

9. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)4 एस0 सी0 सी0 225.

10. एं0 के0 राय बनाम भारत संघ और अन्य (1982) 1 एस0सी0सी0 271.

11. एस0 पी0 गुप्त बनाम भारत संघ और एक अन्य (1981) अनुपूरक एस0 सी0सी0 87.

12. भा0 वि0 आ0, उच्च न्यायालयों में मौखिक और लिखित बहस संबंधी 99वीं रिपोर्ट(1984).

13. पूर्वोक्त, पृष्ठ 16.

14. के0 दुरैस्वामी बनाम तमिल नाडु राज्य ए0आई0आर0 1982 एस0सी0 51.

15. भा0 वि0 आ0, न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण संबंधी 117वीं रिपोर्ट(1986)

16. 61(9)(1987) आस्ट्रेलियन लॉ जर्नल, पृष्ठ 456

अध्याय 6

1. भा0 वि0 आ0, ग्राम न्यायालय संबंधी 114वीं रिपोर्ट(1986)

2. भा0 वि0 आ0, न्यायिक नियुक्तियों के लिए एक नए अधिकरण संबंधी 121वीं रिपोर्ट(1987).

परिशिष्ट 1

(पैरा 1.6, 4.1 और 6.1)

भारत का विधि आयोग

क्रम सं०	विषय	विधि आयोग रिपोर्ट संख्या और अन्य रिपोर्टें	सिफारिशें	सरकार द्वारा की गई कार्रवाई, यदि कोई की गई हो।
1	2	3	4	5
1.	उच्च न्यायालय की मामूली आरंभिक अधिकारिता	(क) 14वीं (1958)	उच्च न्यायालयों की मामूली आरंभिक अधिकारिता बनी रहने दी जानी चाहिए (पैरा 23 पृष्ठ 127)।	कोई नहीं।
		(ख) 79वीं (1979)	वे ही सिफारिशें जो 14वीं रिपोर्ट में हैं।	
		(ग) सतीशचंद्र समिति की (1986)	उच्च न्यायालयों की आरंभिक मामूली सिविल अधिकारिता का तुरंत उत्सादन कर दिया जाना चाहिए। (अध्याय 13, पैरा 8, पृष्ठ 192)	
2.	आरंभिक अधिकारिता विशेष कानून	(क) उच्च न्यायालय कलकत्ता	भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम,	कोई नहीं।

- 83 -

1	2	3	4	5
		मुकदमा समिति,1972 (1972)	पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम,पेटेंट और डिजाइन अधिनियम,उत्तराधिकार अधिनियम, विवाह-विच्छेद अधिनियम,भारतीय पागलपन अधिनियम, संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम,भारतीय दिवाला अधिनियम तथा संगम ज्ञापन का परिवर्तन, विवरणियां फाइल करने में अथवा कंपनी अधिनियम के अधीन आरोप रजिस्टर करने में विलम्ब के लिए माफी देने जैसे विषयों के अधीन उच्च न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता का उत्सादन कर दिया जाना चाहिए तथा अधिकारिता जिला न्यायाधीशों को प्रदान कर दी जानी चाहिए ।	
		(ख) 79वीं रिपोर्ट(1979	भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम	

1	2	3	4	5
			की गई, किंतु यह अनुभव किया गया कि संपूर्ण देश के लिए एक सी संख्या नियत करना वांछनीय नहीं है । जिला न्यायाधीशों की धनीय अपीली अधिकारिता नियत करने संबंधी विषय प्रत्येक राज्य के संबंधित अधिकारियों पर छोड़ दिया गया ।	
		(घ) सतीशचंद्र समिति (1986)	उच्च न्यायालय का प्रथम अपीलों का हरियाणा राज्य में प्रवर्तमान परिपाटी के अनुसार उत्सादन कर दिए जाने की सिफारिश की गई । अनुकल्पत: यह प्रस्थापना की गई कि जिला न्यायाधीशों की धनीय अपीली अधिकारिता पांच लाख पर नियत कर दी जाए, जैसा कि पंजाब राज्य के मामले में होता है ।	
.	सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण	(क) 14वीं रिपोर्ट (1958)	पुनरीक्षण का अधिकार प्रतिधारित किए जाने की सिफारिश की गई ।	सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 का 1976

1	2	3	4	5
		(ख) उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति, 1972 (1972)	वादकालीन आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण के अधिकार का उत्सादन कर दिया जाना चाहिए ।	
		(ग) 27वीं रिपोर्ट (1964)	वे ही सिफारिशें जो 14वीं रिपोर्ट में हैं ।	
		(घ) 54वीं रिपोर्ट (1973)	सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के हटाए जाने की इस आधार पर सिफारिश की गई कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन पर्याप्त उपचार उपलब्ध है ।	
		(ङ) 79वीं रिपोर्ट (1979)	वादकालीन आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षणों के प्रतिधारण की सिफारिश करते समय यह प्रस्थापना की गई कि निचले न्यायालयों के अभिलेख तब तक न मंगाए जाएं जब तक कि उच्च न्यायालय द्वारा उस प्रयोजन के लिए अभिव्यक्त	

1	2	3	4	5
			आदेश न किया जाए, तथा पिटीशनर से अपेक्षा की जाए कि वह उन सुसंगत दस्तावेजों की प्रतिलिपियां फाइल करे जिन पर कि सुनवाई के समय निर्भर किया जाना हो ।	
		(च) सतीश्चंद्र समिति (1986)	बादकालीन आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण के आदेश के अधिकार का हटा लिया जाना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(2) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के समान उपबंध का अधिनियमन । पुनरीक्षण न्यायालयों द्वारा रोक आदेश के दिए जाने के बारे में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 5 के समान उपबंधों का अधिनियमन ।	

1	2	3	4	5
5.	प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम की धारा 25 के अधीन पुनरीक्षण	(क) विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट (1958)	पुनरीक्षण अधिकारिता उच्च न्यायालय के पास रहनी चाहिए।	कुछ नहीं
		(ख) उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति, 1972 (1972)	उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की अधिकारिता हटा ली जानी चाहिए तथा ये शक्तियां जिला न्यायाधीशों को प्रदान कर दी जानी चाहिए।	
		(ग) सतीश चन्द्र समिति (1986)	वे सिफारिशें की कि उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति, 1972 में हैं।	
6.	नियमित द्वितीय अपीलें	(क) 14वीं रिपोर्ट (1958)	द्वितीय अपीलों के अधिकार में कोई कमी नहीं की जानी चाहिए	सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 का 1976 में संशोधन किया गया।
		(ख) 27वीं रिपोर्ट (1964)	वे सिफारिशें जो 14वीं रिपोर्ट में हैं।	
		(ग) उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति, 1972 (1972)	14वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशों से सहमति व्यक्त की तथा यह सिफारिश की कि द्वितीय अपील ग्रहण करने वाले न्यायाधीश को उन विधि के प्रश्नों का कथन करना चाहिए जो उसमें विचारार्थ उद्भूत हुए हों।	

1	2	3	4	5
		(घ) 54वीं रिपोर्ट (1973)	द्वितीय अपील का अधिकार उन मामलों तक सीमित रखे जाने की सिफारिश की गई जिनमें सारभूत विधि प्रश्न अंतर्वलित हों ।	
		(ङ) 79वीं रिपोर्ट (1974)	54वीं रिपोर्ट में अभिव्यक्त किए गए विचारों से सहमति व्यक्त की।	
		(च) सतीशचन्द्र समिति	द्वितीय अपील का पूर्णतया उत्सादन कर दियाजाना चाहिए ।	
7.	<u>लेटर्स पेटेंट अपील</u>	(क) 14वीं रिपोर्ट (1958)	अपीली अधिकारिता के अंतर्गत एकल न्यायाधीश के विनिश्चयों के विरुद्ध कोई लेटर्स पेटेंट अपील नहीं ।	द्वितीय अपीलों मे विनिश्चयों के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट अपील का उत्सादन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100क मे अंतः स्थापन द्वारा कर दिया गया ।
		(ख) उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति, 1972	लेटर्स पेटेंट अपील का उन आदेशों की दशा के सिवाय उत्सादन कर दिया जाना चाहिए जो विशेष	

1	2	3	4	5
			अधिकारिता के अधीन उन रिट पिटीशनों, वादों और कार्यवाहियों में किए गए हैं जिनका विचारण उच्च न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के अंतर्गत किया गया है ।	
		(ग) 79वीं रिपोर्ट (1979)	लेटर्स पेटेंट अपील का उत्सादन।	
		(घ) सतीशचन्द्र समिति (1986)	लेटर्स पेटेंट अपील का उत्सादन कर दिया जाना चाहिए जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य की दशा में किया गया है ।	

अ0शा0सं03/अध्यक्ष/88/वि0आ0 परिशिष्ट 2

(पैरा 3.6 और 3.24)

टैलीफोन नं0 384475

डी0ए0 देसाई,

अध्यक्ष

विधि आयोग

भारत सरकार

शास्त्री भवन, नई दिल्ली

19 जनवरी, 1988

प्रिय न्यायमूर्ति पाठक,

भारत सरकार ने एक आयोग की स्थापना करने का संकल्प किया था जिसका नाम न्यायिक सुधार आयोग रखा जाना था और जिसका उद्देश्य वर्तमान न्याय प्रदान प्रणाली तथा उसकी कमियों और त्रुटियों का गहराई से अध्ययन करना तथा उसमें ऐसे आमूल सुधारों की सिफारिश करना था जिससे कि उस प्रणाली को समाज की समसामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रभावकारी और सुनम्य बनाया जा सके। उसने उसके निर्देश निबन्धन भी तैयार कर लिए थे। फरवरी, 1986 में, न्यायिक सुधारों का अध्ययन करने और उनकी सिफारिश करने का काम भारत सरकार द्वारा तैयार किए गए निर्देश निबन्धनों को दृष्टि में रखते हुए, वर्तमान विधि आयोग को सौंपा गया था। निर्देशन सुविधा के लिए निर्देश निबन्धनों की एक प्रति इस पत्र के साथ उपाबद्ध कर दी गई है। विधि आयोग से अनुरोध किया गया था कि वह इस नए समनुदेशन को उच्च पूर्विकता प्रदान करे। तदनुसार, विधि आयोग ने अपना ध्यान इस समनुदेशन पर संकेन्द्रित किया।

निर्देशन से अब तक विधि आयोग दस रिपोर्टें प्रस्तुत कर चुका है जिनकी सूची तुरंत निर्देश के लिए इस पत्र से उपाबद्ध है।

विधि आयोग अपनी कार्य योजना में उस अवस्था में पहुंच गया है जब वह निर्देश-निबन्धनों की मदों सं0 1(iii) और 2 के प्रति विशिष्ट निर्देश से, उच्च न्यायालय और भारत के उच्चतम न्यायालय के बकाया मुकदमों की समस्या की गहराई से परीक्षा का काम हाथ में लेगा ।

विगत समय में, विधि आयोग ने अपनी 14वीं, 58वीं और 79वीं रिपोर्टों में उच्च न्यायालय की संरचना और अधिकारिता की पड़ताल की है । न्याय प्रशासन विषयक 14वीं रिपोर्ट में भारत के उच्चतम न्यायालय के बारे में एक अध्याय है । 55वीं रिपोर्ट में एक मौलिक सुझाव यह दिया गया था कि उच्चतम न्यायालय में एक सांविधानिक खंड का गठन कर दिया जाए । मैं न्यायोचित रूप से यह धारणा कर सकता हूं कि आप इन रिपोर्टों में दी गई सिफारिशों से परिचित हैं । किन्तु मुझे यह कहना होगा कि 59वीं रिपोर्ट को कार्यान्वित तक नहीं किया गया है और आज तक मुद्रित भी नहीं कराया गया है ।

विधि आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन मन्द गति से हो रहा है । वस्तुत: अधिकतर तो सिफारिशों की उपेक्षा कर दी जाती है । स्थिति जो भी हो, भारत सरकार ने इस देश की न्याय प्रदान प्रणाली में आमूल सुधार लाने की तीव्र इच्छा व्यक्त की और उस लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए निर्देश निबन्धन तैयार किए ।

मुझे आपको यह सूचित करना है कि [illegible] ने विभिन्न निर्देश निबन्धनों से सुसंगत दस रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं, जिनमें से तीन, अर्थात् 115वीं, 122वीं और 123वीं प्रत्यक्षत: न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के बारे में हैं, क्योंकि वे केन्द्रीय कर न्यायालय की सिफारिश करती हैं तथा कर विषयक मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता को निरस्त करती हैं ।

विधि आयोग ने इसी प्रकार के दृष्टिकोण से अनुप्राणित होकर विशिष्ट विषयों से सुलटने के लिए राज्य और केन्द्रीय स्तर पर औद्योगिक सम्बन्ध आयोग की तथा उन्हीं दोनों स्तरों पर केन्द्रीय शैक्षिक अधिकरण की भी सिफारिश की है और साथ ही इन मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता निरस्त की है ।

बकाया मुकदमों की समस्या का प्रत्यक्ष अन्तर्सम्बन्ध उच्च न्यायालयों और भारत के उच्चतम न्यायालय में रिक्तियों के भरे जाने के क्षेत्र में हुई घोर असफलता से है । मैं इस बात से तो अवगत नहीं हूं कि दोष कहां विद्यमान है । यह तथ्य तो है ही कि रिक्तियों के भरे जाने में अत्यधिक विलम्ब होता है । मुझे इस सम्बन्ध में यह सूचित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि विधि आयोग ने एक व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की स्थापना की जाने की सिफारिश की गई है ।

विधि आयोग बकाया मुकदमों की समस्या और उसके साथ अन्तर्वलित उच्चतम न्यायालय की रिक्तियों के न भरे जाने की समस्या की, अपनी योजना बद्ध और परियोजित कार्य अनुसूची के अन्तर्गत पड़ताल करेगा ।

आपको यह सूचित करने में मुझे प्रसन्नता हो रही है कि इस बाबत विधि आयोग की प्रायोगिक विचारणा क्या है, ताकि आपसे उसके प्रति समीक्षात्मक अनुक्रिया प्राप्त हो सके ।

राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की बाबत रिपोर्ट में विधि आयोग ने एक आयोग की स्थापना की जाने की प्रस्थापना की है जिसके अध्यक्ष भारत के मुख्य न्यायमूर्ति होंगे तथा जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में हुई रिक्तियों के शीघ्र ही भरे जाने की समस्या से सुलटेगा । यदि इसे कार्यान्वित किया जाता है तो विधि आयोग की यह राय है कि इससे स्थिति बहुत कुछ सम्हल जाएगी । किन्तु कोई इतने से ही तो तुष्ट होकर

कर नहीं बैठ सकता । अत: मेरा आपसे यह अनुरोध है कि आप इस बाबत एक और सुझाव पर विचार करें ।

मुझे यह बताया गया कि तीन दशक पूर्व से एक कन्वेंशन स्थापित हो गया है कि जब तक सभी रिक्तियां नहीं भर ली जातीं तब तक मुख्य न्यायमूर्ति संविधान के अनुच्छेद 128 का आश्रय नहीं ले सकते । यह कन्वेंशन इस तथ्य की पृष्ठभूमि में स्थापित हुआ था कि रिक्तियां अत्यन्त शीघ्रता से भरी जाती हैं । आज की परिस्थिति आत्यंतिक रूप से भिन्न है । यदि इस कन्वेंशन का परिवर्तित परिस्थितियों में समादर किया जाता है तो इससे अनुच्छेद 128 निरर्थक हो जाएगा जिसका पूर्वानुमान संविधान निर्माता नहीं कर सकते थे । अत: इस समस्या पर दो स्वतन्त्र दृष्टियों से विचार किया जा सकता है ।

पदासीन न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति या मृत्यु होने पर रिक्ति हो जाती है । मृत्यु तो ऐसी सुनिश्चित घटना है कि कोई उसकी पूर्वकल्पना नहीं कर सकता और न ही उससे विवेकपूर्वक निपट सकता है, किन्तु सेवानिवृत्ति की तो पहले से जानकारी होती है । अत: यदि आगामी रिक्तियों को भरने के लिए बहुत पहले से उपाय भी किए जाते हैं किन्तु फिर भी यदि रिक्ति की पूर्ति नहीं की जाती है तो भी पदावरोही न्यायाधीश तब तक पदासीन बना रहेगा जब तक कि पदग्राही की नियुक्ति नहीं की जाती है । इस सुझाव के विरुद्ध एक आपत्ति यह की गई है कि यदि मुख्य न्यायमूर्ति की किसी न्यायाधीश के बारे में अच्छी राय है तो हो सकता है कि वे उसके पदोत्तरवर्ती की सिफारिश न करें जब कि किसी न्यायाधीश के बारे में अच्छी राय है तो हो सकता है कि वे उसके पदोत्तरवर्ती की सिफारिश न करें जबकि किसी ऐसे व्यक्ति को, जो इतना उत्कृष्ट कृपापात्र नहीं है, न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा।

उसके स्थान पर पदोन्नतवर्ती लाकर प्रत्याशित निकाल कर बाहर किया जा सकता है । यह आशंका इस बात को दृष्टि में रखते हुए पूर्णतया निराधार है कि रिक्तियाँ उस कालानुक्रम के अनुसार भरी जाती हैं जो घटित हो चुका है । अंतर एक या दो मास का हो सकता है । किन्तु इस पद्धति को अपनाने से न्यायालय की मंजूरशुदा न्यायाधीश संख्या में कभी भी कमी नहीं होगी ।

द्वितीय प्रायोगिक सुझाव यह है कि राजधानी दिल्ली में उच्चतम न्यायालय के कुछ सेवानिवृत्त न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के पश्चात् बस गए हैं । उन्होंने अपना ही निवासस्थान स्थापित कर लिया है तथा अपनी परिवहन व्यवस्था बना ली है । अनुच्छेद 128 में यह उपबंध है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, किसी भी समय, राष्ट्रपति की पूर्वसहमति से किसी व्यक्ति से जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है या जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है और उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए सम्यक् रूप से अर्हित है, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा ।

जो न्यायाधीश राजधानी में बस गए हैं, उनकी सेवाएं सूचीबद्ध की जा सकती हैं। इसमें इस बात के कारण कि किसी पृथक् भवन की स्थापना की जाने की आवश्यकता नहीं है, किसी पूंजी व्यय की आवश्यकता नहीं है। प्रश्न तो केवल न्यायालय समय का समायोजन किए जाने का है। सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से प्रात: 8.30 बजे आने और दोपहर 12 बजे तक काम करने की अपेक्षा की जा सकती है। तीन तीन न्यायाधीशों की चार भिन्न भिन्न न्यायपीठों का गठन करके, जिनमें से दो न्यायपीठें पुरानी सिविल अपीलों और दो न्यायपीठें पुरानी दांडिक अपीलों से निपटेंगी, अर्थात् उन अपीलों से निपटेंगी जो 1980 से पहले संस्थित की गई थीं, वे अनेक मामलों का यथासंभव तेजी से निपटारा कर सकते हैं तथा यह उच्चतम न्यायालय भवन की न्यून उपयोजित प्रतिष्ठापित धारिता का सदुपयोग होगा। उन्हें पेंशन और उपदान के पेंशन समतुल्य की कटौती किए बिना पूरा वेतन देकर उनकी संपूर्ति की जानी होगी। इसमें बहुत कम व्यय का समावेश होगा तथा इससे उन पुराने मामलों के, जिनके कारण इस प्रणाली को बदनामी मिली है, निपटारे में बहुत कुछ मदद मिलेगी। साथ ही, इससे उन प्रतिभावान व्यक्तियों के अनुभव-सागर का भी उपयोग होगा जो उस समाज की सेवा करने के लिए शारीरिक रूप से योग्य हैं, जिसने कि उन्हें प्रतिष्ठा प्रदान की थी। [illegible] अब ऊपर निर्दिष्ट कन्वेंशन की इतिश्री की जा सकती है क्योंकि अब उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है।

मैं कुछ मामलों में एकल न्यायाधीश न्यायपीठ के गठन के प्रति बिल्कुल निर्देश नहीं कर रहा हूं क्योंकि यह बात पहले ही उच्चतम न्यायालय में क्रियाधीन है। इस उपाय से, रिक्तियों के भरे जाने में विलम्ब से उत्पन्न गई बीती

परिस्थिति से उद्धार पाने में कुछ हद तक सहायता मिलेगी ।

यह दृष्टिकोण यथावश्यक परिवर्तन सहित उच्च न्यायालयों को भी लागू हो सकता है ।

मेरा आपसे अनुरोध है कि इस देश के न्याय प्रशासन के अध्यक्ष होने तथा इस प्रणाली की समीक्षा से गंभीरतया चिन्तित होने के कारण आप इन प्रायोगिक सुझावों के प्रति अपनी अनुक्रिया व्यक्त करें और साथ ही अपने भी कुछ नए और मौलिक सुझाव दें जिससे कि विधि आयोग को अपने इस दुष्कर कार्य में सहायता मिले ।

सभी न्यायाधीशों को पृथक् पत्र लिखने का मेरा पूर्वतर अनुभव निरर्थक साबित हुआ है । अतः मैं यह पत्र आपको इस अनुरोध के साथ सम्बोधित कर रहा हूं कि आप अपने गौरवान्वित सहयोगी न्यायाधीशों से परामर्श कर लें तथा अपनी सुविचारित राय यथासंभव शीघ्र मेरे पास भेजने का कष्ट करें ।

सादर,

भवदीय

(डी०ए० देसाई)

माननीय श्री आर० एस० पाठक,
भारत के मुख्य न्यायमूर्ति,
भारत का उच्चतम न्यायालय,
तिलक मार्ग,
नई दिल्ली ।

संलग्नक : उपर्युक्तानुसार

न्यायिक सुधारों के अध्ययन के संदर्भ में निर्देश निबंधन

1. निम्नलिखित द्वारा न्याय प्रशासन की प्रणाली के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता :-

(i) विवादों के समाधान के लिए ग्रामीणक्षेत्रों में न्याय पंचायत संस्था और अन्य तंत्रों की स्थापना, विस्तारण और दृढ़ीकरण द्वारा;

(ii) उपयुक्त क्षेत्रों और केन्द्रों में परिनिश्चित अधिकारिता और शक्तियों सहित सहभागी न्याय प्रणाली की स्थापना द्वारा;

(iii) न्यायिक सोपानक्रम में अन्य निःश्रेणियों या प्रणालियों की स्थापना द्वारा जिससे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा में कमी आए ।

2. वे विषय जिनके लिए अधिकरणों की (सेवा अधिकरणों को छोड़कर) जो संविधान के भाग 14-क में अनुध्यात हैं, शीघ्र स्थापना की जाने की आवश्यकता है तथा उनकी स्थापना और कार्यकरण से संबंधित विभिन्न पहलू ।

3. प्रक्रिया विधियां, साधारणतया मामलों का शीघ्र ही निपटारा करने की दृष्टि से अनावश्यक मुकदमेबाजी को निरस्त करना और मामलों की सुनवाई में विलम्ब दूर करना तथा प्रक्रियाओं और प्रक्रिया विधियों में सुधार तथा विशिष्ट तथा ऐसी प्रक्रियाएं निकालना जो मद 1(i) और 1(iii) में अनुध्यात निबंधनों के लिए समुचित हों ।

4. अधीनस्थ न्यायालयों / अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए नियुक्तियों की प्रणाली ।

5. न्यायिक अधिकारियों का प्रशिक्षण ।

6. न्याय प्रशासन की प्रणाली के दृढ़ीकरण में विधिवृत्ति की भूमिका ।

7. ऐसे सन्नियम विनिर्मित किए जाने की वांछनीयता जिनका कि सरकार और पब्लिक सेक्टर उपक्रमों को विवादों के निपटारे में अनुसरण करना चाहिए, जिसके अंतर्गत सरकार और ऐसे उपक्रमों की ओर से मुकदमों के संचालन की वर्तमान

प्रणाली का पुनर्विलोकन भी है ।

8• मुकदमा करने का खर्च जिससे कि मुकदमा करने वालों पर पड़ने वाले उसके भार में कमी आए ।

9• अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का बनाया जाना तथा

10• अन्य ऐसे विषय जो कि आयोग पूर्वोक्त प्रयोजनों के लिए समुचित या आवश्यक समझे अथवा जो उसे सरकार द्वारा समय-समय पर निर्दिष्ट किए जाएं ।

<u>उपाबंध</u>

114• एक सौवांदहवीं रिपोर्ट (12•8•1986)	"ग्राम न्यायालय" निम्नतम स्तर पर विवादों के निपटारे के लिए आनुकल्पिक न्यायाधिकरण
115 एकसौपन्द्रहवीं रिपोर्ट (28•8•1986)	कर न्यायालय ।
116 एकसौसोलहवीं रिपोर्ट (27•11•1986)	अखिलभारतीय न्यायिक सेवा का बनाया जाना
117•एकसौसत्रहवीं रिपोर्ट (28•11•1986)	~~अधीनस्थ न्यायालयों~~ न्यायिक अधिकारियों का प्रशिक्षण ।
118•एकसौ अठारहवीं रिपोर्ट (26•12•1986)	अधीनस्थ न्यायालयों / अधीनस न्यायपालिका में नियुक्ति की प्रणाली ।
119 एकसौ उन्नीसवींरिपोर्ट (19•2•1987)	मोटरयान अधिनियम, 1939 के अधीन मोटरदुर्घटनाओं के पीड़ितों के लिए अन्य न्यायालयों में प्रवेश ।

120. एकसौ बीसवीं रिपोर्ट §31.7.1987§	न्यायपालिका में जनशक्ति योजना ।
121 एकसौ इक्कीसवीं रिपोर्ट §31.7.1987§	न्यायिक नियुक्तियों के लिए नया अधिकरण ।
122 एकसौ बाईसवीं रिपोर्ट §9.12.1987§	श्रमिक प्रशासन में राष्ट्रीय एकरूपता के लिए अधिकरण
123. एकसौ तेईसवीं रिपोर्ट §15.1.1988§	न्याय प्रशासन का विकेन्द्रीकरण : उच्चतर शिक्षा केन्द्रों को अंतर्ग्रसित करने वाले विवाद ।

प्रतिलिपि

अ०शा० सं० 3/अ०स०/88-वि०आ० 25 जनवरी, 1988

प्रिय न्यायमूर्ति पाठक,

अपने पत्र सं० अ०शा० 3/अ०स०/88-वि०आ०, तारीख 19 जनवरी, 1988 का अनुवर्तन मैं, मैं इस लघु पत्र द्वारा आपके व्यस्त कार्यक्रम में अतिक्रमण कर रहा हूँ जो असावधानता से हुई उस गलती को सुधारने मात्र के लिए है जो मेरे पूर्वोक्त पत्र में हो गई है। उस पत्र के पैरा 4 के अंत में मैंने यह कहा है कि 95वीं रिपोर्ट को कार्यान्वित तक नहीं किया गया है और आज तक मुद्रित भी नहीं कराया गया है। इस तथ्य से यह धारणा होने की संभावना है कि 95वीं रिपोर्ट लोकसभा और राज्यसभा के पटल पर नहीं रखी गई है। पश्चात्वर्ती जानकारी से इस बात की पुष्टि हो गई है कि वह रिपोर्ट दोनों सदनों के पटल पर रख दी गई थी जिससे कि उसमें हितबद्ध कोई भी व्यक्ति उसकी प्रति प्राप्त कर सकता है। साथ ही, यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि रिपोर्ट विधि और न्याय मंत्रालय ने छापी है। अत: रिपोर्ट इस स्पष्टीकरण के साथ पढ़ी जाए।

मुझे आशा है कि उस पत्र में उठाए गए प्रश्नों के प्रति निर्देश से मुझे आपकी अनुक्रिया शीघ्र ही प्राप्त होगी।

सादर।

भवदीय,

(डी०ए० देसाई)

माननीय श्री आर०एस० पाठक,
भारत के मुख्य न्यायमूर्ति,
5-कृष्णमेनन मार्ग,
नई दिल्ली-110011

परिशिष्ट 3
(पैरा 3.6 और 3.24)

डी०ए० देसाई,
अध्यक्ष

टेलीफोन नं० 384475
विधि आयोग,
भारत सरकार
शास्त्री भवन, नई दिल्ली

20 जनवरी, 1988

प्रिय न्यायमूर्ति,

भारत सरकार ने एक आयोग की स्थापना करने का संकल्प किया था जिसका नाम न्यायिक सुधार आयोग रखा जाना था और जिसका उद्देश्य वर्तमान न्याय प्रदान प्रणाली तथा उसकी कमियों और त्रुटियों का गहराई से अध्ययन करना तथा उसमें ऐसे आमूल सुधारों की सिफारिश करना था जिससे कि उस प्रणाली को समाज की सम-सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रभावकारी और सुनम्य बनाया जा सके। उसने उसके निर्देश निर्बन्धन भी तैयार कर लिए थे। फरवरी 1986 में, न्यायिक सुधारों का अध्ययन करने और उनकी सिफारिश करने का काम भारत सरकार द्वारा तैयार किए गए निर्देश-निर्बंधनों को दृष्टि में रखते हुए, वर्तमान विधि आयोग को सौंपा गया था। निर्देशन सुविधा के लिए निर्देश निबन्धनों की एक प्रति इस पत्र के साथ उपाबद्ध कर दी गई है। विधि आयोग से अनुरोध किया गया था कि वह इस नए समनुदेशन को उच्च पूर्विकता प्रदान करे। तदनुसार, विधि आयोग ने अपना ध्यान इस समनुदेशन पर संकेन्द्रित किया।

निर्देशन से अब तक विधि आयोग दस रिपोर्टें प्रस्तुत कर कर चुका है जिनकी सूची तुरंत निर्देशन के लिए उस पत्र से उपाबद्ध है।

विधि आयोग अपनी कार्य योजना में उस अवस्था में पहुँच गया है जब वह निर्देश निबन्धनों की मदों सं० 1(ii) और 2 के प्रति विशिष्ट निर्देश से, उच्च न्यायालय और भारत के उच्चतम न्यायालय के बकाया मुकदमों की समस्या की गहराई से परीक्षा का काम हाथ में लेगा।

विगत समय में, विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट, 58वीं और 79वीं रिपोर्टों में उच्च न्यायालय की संरचना और अधिकारिता की पड़ताल की है। इन रिपोर्टों के अतिरिक्त, एक समिति की स्थापना की गई थी, जिसका नाम उच्च न्यायालय बकाया मुकदमा समिति, 1972 था और जिसके अध्यक्ष भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति श्री न्यायमूर्ति जे०सी० शाह थे। यह एक अनौपचारिक समिति थी जिसको कोई विनिर्दिष्ट निर्देश-निबंधन नहीं थे। इस समिति को, केवल उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों की बकाया में कमी लाने के लिए उपाय सुझाने के कर्तव्य से भारित किया गया था। समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करके बकाया मुकदमों की समस्या से सुलटने के लिए विस्तारपूर्वक सिफारिशें कीं। समिति ने उस सुविदित तथ्य पर विशेषतया प्रकाश डाला जो कि संस्थित किए जाने वाले मामलों के आधिक्य का मुकाबला करने और उनकी बढ़ती हुई संख्या का निपटारा करने में उच्च न्यायालय की असमर्थता के बारे में है और जो स्थिति मुख्यतया उपयुक्त समय पर उच्च न्यायालयों को आवश्यक संख्या में न्यायाधीश प्रदान न किए जाने के कारण पैदा हुई मानी जा सकती है। उसने इस बात का जोरदार समर्थन किया कि रिक्तियों का अधिकतम संभव शीघ्रता से भरा जाना आवश्यक है। रिपोर्ट में सम्मिलित सांख्यिकीय तालिका से दर्शित होता है कि रिक्तियों के भरे जाने में 8 मास 7 दिन से लेकर 1 मास 18 दिन तक का विलम्ब हुआ है जिसकी ओर भी समिति का ध्यान आकृष्ट हुआ है। आज तो औसत तौर पर स्थिति यह है कि रिक्तियाँ वर्षों तक नहीं भरी जाती हैं। इस स्थिति में अब तो और भी अधिक गिरावट आ गई है।

विधि आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन मंदगति से हो रहा है। वस्तुतः अधिकतर तो सिफारिशों की उपेक्षा कर दी जाती है। स्थिति जो भी हो, भारत सरकार ने इस देश की न्याय प्रदान प्रणाली में आमूल सुधार लाने की

तीव्र इच्छा व्यक्त की थी और उस लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए, निर्देश निबंधन तैयार किए थे।

मुझे आपको यह सूचित करना है कि वर्तमान विधि आयोग ने विभिन्न निर्देश निबंधनों से सुसंगत दस रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं, जिनमें से तीन अर्थात् 115वीं, 122वीं और 123वीं प्रत्यक्षतः न्याय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के बारे में है, क्योंकि वे केन्द्रीय कर न्यायालय की सिफारिश करती हैं तथा कर विषयक मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता को निरस्त करती हैं। विधि आयोग ने इसी प्रकार के दृष्टिकोण से अनुप्राणित होकर विशिष्ट विषयों से सुलटने के लिए राज्य और केन्द्रीय स्तर पर औद्योगिक संबंध आयोग की तथा उन्हीं दोनों स्तरों पर केन्द्रीय शैक्षिक अधिकरण की भी सिफारिश की है और साथ ही इन मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता निरस्त की हैं।

बकाया मुकदमों की समस्या का प्रत्यक्ष अंतर्संबंध उच्च न्यायालयों और भारत के उच्चतम न्यायालय में रिक्तियों के भरे जाने के क्षेत्र में हुई घोर असफलता से है। मैं इस बात से तो अवगत नहीं हूँ कि दोष कहाँ विद्यमान है। यह तथ्य तो है ही कि रिक्तियों के भरे जाने में अत्यधिक विलम्ब होता है। मुझे इस संबंध में यह सूचित करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि विधि आयोग ने एक व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की स्थापना की जाने की सिफारिश की गई है।

विधि आयोग बकाया मुकदमों की समस्या और उसके साथ अंतर्वलित उच्च न्यायालयों की रिक्तियों के न भरे जाने की समस्या की, अपनी योजनाबद्ध और परियोजित कार्यअनुसूची के अंतर्गत पड़ताल करेगा।

आपको यह सूचित करने में मुझे प्रसन्नता हो रही है कि इस बाबत विधि आयोग की प्रायोगिक विचारणा क्या है, ताकि आपसे उसके प्रति समीक्षात्मक अनुक्रिया प्राप्त हो सके ।

राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की बाबत रिपोर्ट में विधि आयोग ने एक आयोग की स्थापना की जाने की प्रस्थापना की है जिसके अध्यक्ष भारत के मुख्य न्यायमूर्ति होंगे । तथा जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में हुई रिक्तियों के शीघ्र ही भरे जाने की समस्या से सुलटेगा। यदि इसे कार्यान्वित किया जाता है तो विधि आयोग की यह राय है कि इससे स्थिति बहुत कुछ सम्भल जाएगी । किन्तु कोई इतने से ही तो तुष्ट हो कर नहीं बैठ सकता । अतः मेरा आपसे यह अनुरोध है कि आप इस बाबत एक और सुझाव पर विचार करें ।

मुझे यह बताया गया कि तीन दशक पूर्व से एक कन्वेंशन स्थापित हो गया है कि जब तक सभी रिक्तियां नहीं भर ली जातीं तब तक मुख्य न्यायमूर्ति संविधान के अनुच्छेद 224क का आश्रय नहीं ले सकते । यह कन्वेंशन इस तथ्य की पृष्ठभूमि में स्थापित हुआ था कि रिक्तियां अत्यंत शीघ्रता से भरी जाती हैं । आज की परिस्थिति आत्यंतिक रूप से भिन्न है । यदि इस कन्वेंशन का परिवर्तित परिस्थितियों में समादर किया जाता है तो इससे अनुच्छेद 224क निरर्थक हो जाएगा जिसका पूर्वानुमान संविधान निर्माता नहीं कर सकते थे । अतः इस समस्या पर दो स्वतंत्र दृष्टियों से विचार किया जा सकता है ।

पदासीन न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति या मृत्यु होने पर रिक्ति हो जाती है । मृत्यु तो ऐसी अनिश्चित घटना है कि कोई उसकी पूर्वकल्पना नहीं कर सकता और न ही उससे विवेकपूर्वक निपट (सुलझ) सकता है, किन्तु सेवानिवृत्ति की तो पहले से ही जानकारी होती है । अतः यदि आगामी रिक्तियों को भरने के लिए बहुत पहले से उपाय भी किए जाते हैं किन्तु फिर भी यदि रिक्ति की पूर्ति नहीं की जाती है तो भी पदावरोही न्यायाधीश तब तक पदासीन बना रहेगा जब तक कि पदग्राही की नियुक्ति नहीं की जाती है । इस सुझाव के विरुद्ध एक आपत्ति यह की गई है कि यदि मुख्य न्यायमूर्ति की किसी न्यायाधीश के बारे में अच्छी राय है तो हो सकता है कि वे उसके पदोत्तरवर्ती की सिफारिश न करें, जब कि किसी ऐसे

ऐसे व्यक्ति को, जो इतना उत्कृष्ट कृपा पात्र नहीं है, उसके स्थान पर पदोन्नर्ती लाकर, यथासंभवशीघ्र निकालकर बाहर किया जा सकता है । यह आशंका इस बात को दृष्टि में रखते हुए पूर्णतया निराधार है, कि रिक्तियाँ उस कालानुक्रम के अनुसार भरी जाती हैं जो घटित हो चुका है । अन्तर एक या दो मास का हो सकता है । किंतु इस पद्धति को अपनाने से न्यायालय की मंजूरशुदा न्यायाधीश संख्या में कभी भी कमी नहीं होगी ।

द्वितीय प्रायोगिक सुझाव में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की सेवाओं का उपयोग अन्तर्वेलित है । प्राय: उच्च न्यायालय का अपना संस्थापन प्रत्येक राज्य की राजधानी में होता है । कुछ राज्यों में उच्च न्यायालयों की न्यायपीठें उसी राज्य के विभिन्न नगरों में स्थापित की जाती हैं । पंजाब और हरियाणा की स्थिति में, दोनों राज्यों का एक सामान्य उच्च न्यायालय है । इसी प्रकार, आसाम की स्थिति में गुवाहाटी स्थित उच्च न्यायालय की अनेक राज्यों पर अधिकारिता है । अत: जब न्यायाधीश उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त होते हैं तो उनमें से कुछ तो उसी नगर में बस जाते हैं जिसमें या तो उच्च न्यायालय की प्रधान न्यायपीठ स्थित होती है या उस नगर में बसते हैं जिसमें अन्य न्यायपीठ स्थापित होती है । इन सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के अक्सर अपने निवास स्थान और अपनी परिवहन व्यवस्था होती है । अनुच्छेद 224क में यह उपबंध किया गया है कि किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, किसी समय, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से किसी व्यक्ति से, जो उस उच्च न्यायालय या किसी अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा । जो न्यायाधीश नगर में बस गए हैं, उनकी सेवाएं सूचीबद्ध की जा सकती हैं और उनके लिए निवास स्थान का प्रबन्ध किए जाने

और परिवहन व्यवस्था के प्रश्न पर विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं है । इसमें इस बात के कारण कि किसी पृथक भवन के बनाए जाने की आवश्यकता नहीं है, कोई पूंजी व्यय अन्तर्वलित नहीं है । प्रश्न तो केवल न्यायालय समय का समायोजन किए जाने का है । सेवा निवृत्त न्यायाधीश से प्रातः 8.30 बजे आने और दोपहर 12 बजे तक कार्य करने की अपेक्षा की जा सकती है । तीन तीन न्यायाधीशों की चार भिन्न भिन्न न्यायपीठों का गठन करके, जिनमें से दो न्यायपीठें पुरानी सिविल अपीलों और दो न्यायपीठें पुरानी दांडिक अपीलों से निपटेंगी, अर्थात् उन अपीलों से निपटेंगी जो 1984 से पहले संस्थित की गई थीं, बकाया मुकदमों पर धावा बोलने का भारी प्रयास किया जा सकता है । उनका मामले ग्रहण किए जाने से या किसी अन्य कार्य से संबंध नहीं रखा जाना चाहिए । उन्हें केवल वे मामले समनुदिष्ट किए जाने चाहिएं जो अन्यत्र सुनवाई के लिए सूचीबद्ध हैं । जो मामले तैयार नहीं हैं, वे भी उनके तैयार किए जाने की बाबत निदेश दिए जाने के लिए उनके ध्यान में लाए जा सकते हैं । इस पद्धति से न्यायालय भवनों की न्यून उपयोजित प्रतिष्ठापित धारिता का उपयोग सुनिश्चित होगा । इससे उन प्रतिभावान व्यक्तियों के अनुभव सागर का भी उपयोग होगा, जो उस समाज की सेवा करने के लिए शारीरिक रूप से योग्य हैं जिसने उन्हें प्रतिष्ठा प्रदान की थी । उन्हें पेंशन और उपदान के पेंशन समतुल्य की कटौती किए बिना पूरा वेतन देकर उनकी संपूर्ति भी की जानी होगी । सब मिलाकर इसमें उपान्तिक व्यय तो होगा किंतु इससे न्याय प्रणाली पर लगे अभिशाप को दूर करने में सहायता मिलेगी । इस सुझाव के प्रकाश में अब ऊपर निर्दिष्ट कन्वेंशन की इतिश्री की जा सकती है क्योंकि अब उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है ।

मेरा आपसे अनुरोध है कि अपने राज्य के न्याय प्रशा-